मेरे प्राण !

तुमसे मैंने बहुत कुछ पाया

और

दे रही हूँ वियोगदग्ध आँसू

और मुझ अभागिन के पास रह ही क्या गया है !

PATHAR KE HOONTH
By Gulshan Nanda

1

छोटे से गाँव में आज बड़ी चहल-पहल थी। गरीबों की बस्ती आज इस तरह रौनक पर थी, जैसे दिवाली की शाम। बच्चों में तो और खुशी छाई हुई थी। सब इधर से उधर चीखते-चिल्लाते हुए दौड़ रहे थे। बड़े-बूढ़ों की व्यस्तता और दौड़-धूप के बीच नासमझ बालकों का कोलाहल बड़ा अप्रिय लग रहा था। कुछ बूढ़ों ने डाँट-डपट कर बालकों की उछल कूद बन्द कराने की कोशिश की मगर वे शैतान और भी उद्दंड हो गये।

गाँव के बीच में बूढ़े संत का घर है। है तो वह किसान मगर खाने-पीने से खुशहाल है। आज उसकी बेटी मुरली की शादी है।

शहनाई की मधुर ध्वनि से पेड़-पत्ते तक मस्ती से झूम रहे हैं। कहीं डफ बज रहा है, कहीं ढोलक की ताल पर बंसी के स्वर में प्राण फूँके दे रहे हैं।

चि० वि०

एक अजीब खुशी, एक विचित्र प्रसन्नता छाई हुई है चारों ओर।

संत के दरवाजे पर गांव भर की लालटेनें जल रही थीं, क्योंकि बेचारे ग्रामीणों को गैस लाइट कहाँ नसीब होता है, जब कभी गाँव में किसी के यहाँ ब्याह-बारात का मौका आता है तो गाँव भर की लालटेनें एक स्थान पर इकट्ठा होकर बारात का मुँह चमकाती हैं और उस पीली-पीली रोशनी के बीच बारातियों के रंग-बिरंगे चेहरे विचित्र ढंग के लगते हैं।

खेत खलिहान में बाराती इकट्ठे हैं। आमोद-प्रमोद चल रहा है। ढोलक और मँजीरे पर गाते हुए कुछ भाँड़ बालकों, जवानों और वृद्धों का मनोरंजन कर रहे हैं। गाँव के लिये भाँड़ों का नाच-गाना जैसे देवी-वरदान।

एक भाँड़ ने कान में उँगली डालकर मुँह फाड़ अलाप लिया—

तोहरी अँखिया क पुतरिया जैसे बदरा क छाँव,
जैसे भिनुसारे की लाली, गोरी मेंहदी लागे पाँव।

रात के दस बज चुके थे। विवाह-मंडप पर वर-वधू पक्ष के प्रमुख व्यक्ति उपस्थित थे। दुल्हा-दुलहिन की शादी हो चुकी थी। अब भाँवरें पड़ने की तैयारी थी।

दुल्हा के पिता सजीवनलाल, मंडप से बाहर आये, शायद पालकी वालों को कुछ आदेश देने के लिए।

जब सजीवनलाल घर के गलियारे से होकर आने लगे तो अँधेरे में उनका शरीर किसी से टकरा गया। सजीवनलाल तो वर के पिता थे, वधू पक्ष वालों की टक्कर कैसे बरदाश्त करते? चट क्रोध में बोल उठे—"अन्धे हो क्या जी? देख कर नहीं चलते—टकराने लगते हो?...आँखें नहीं तो किसी से उधार माँगलो..."

"आँखें हैं सरकार! हँड़िया जैसी बड़-बड़ी!" किसी की आवाज आई।

"कौन हो तुम ?" सजीवनलाल ने पूछा ।

"यहाँ अँधेरा है सरकार, तनिक उजाले में चलिये...बग्गू कोहार को कौन नहीं पहचानता !....वह क्या उस कोने पर मेरा घर है....एक ज़रूरी बात कहनी थी, इसी लिये आप को धक्का....काम काज के दिनों में बिना धक्का खाये, कौन किसकी तरफ़ देखता है !"

गलियारे के धुँधले प्रकाश में सजीवनलाल ने अपने सामने खड़े हुए उस व्यक्ति को ओर देखा, फिर पूछा—"क्या कहना चाहते हो तुम ?...जल्दी कहो, मुझे देर हो रही है..."

"कहता हूँ सरकार ! देर-सबेर तो होती-ही रहती है...क्या शादी हो गई ?"

"शादी हो गई, अब भाँवरें पड़ रही हैं—तुम कहना क्या चाहते हो !"

सजीवनलाल व्यक्ति की बातों से उत्सुक हो उठे थे, साथ ही जल्द बाज़ी के कारण उससे अपना पिंड भी छुड़ाना चाहते थे ।

"आपने यह शादी करने में बहुत जल्दी की सरकार ! आपने ठीक से छान-बीन की होती तो आप इस शादी के लिये कभी तैयार न होते । ख़ैर, अब तो शादी हो गई..."

"हां तो गई शादी मगर तुम कहना क्या चाहते हो ! तुम बड़े अजीब आदमी मालूम देते हो...सीधी बात का सीधा जवाब देना नहीं जानते क्या !" सजीवनलाल ने कठोर स्वर में कहा ।

"सीधी-सी बात है सरकार ! आप इतने धनी कि सोने की चमक से गरीबों की आँखों में फूली पड़ जाय—आप का इतना नाम कि ईश्वर का नाम भी पानी भरे । आप का ऐसा स्वभाव कि लाजवन्ती झख मारे...ऐसे गऊ लोगों के साथ दुनिया भी धोखेबाज़ी करती है सरकार !...मेरा क्या, मैं तो सीधा-सादा आदमी, आपको लुटता देख कर बचाने दौड़ा

आया...होम करते मेरा हाथ जल गया सरकार! तभी तो आप इतने जोर से बिगड़ पड़े..." जग्गू ने अजीब नाटकीय ढंग से कहा।

सजीवनलाल हैरान हो रहे थे।

व्यग्र स्वर में बोले वे—"तुम तो अजीब पहेली बुझा रहे हो! .. कुछ साफ-साफ कहते भी नहीं। आखिर इरादा क्या है तुम्हारा?"

"लीजिये एकदम साफ-साफ सरकार!...बात यह है कि इस शादी में आपको बहुत बड़ा धोखा दिया गया है..."

"कैसा धोखा?"

"आपकी बहू अन्धी है सरकार!" कह कर जग्गू विचित्र मुद्रा बनाकर हँसा।

"अन्धी है?" सजीवनलाल आकाश से गिरते हुए अत्यन्त विस्मित स्वर में बोले—"क्या कहते हो तुम?"

"एकदम सच कहता हूँ सरकार!..मुरली मुझसे चार ही साल तो छोटी है। बचपन में भूलभुलैया खेलते समय उस अन्धी की आँखें बन्द करने की भी जरूरत नहीं पड़ती थी...अच्छा मेरा काम हो गया। अब मैं चलता हूँ। मेरी बातों पर कुछ भी शक हो तो पता लगा लीजियेगा। एक बात भी झूठ निकले तो जग्गू लोहार की गरदन उड़ा दीजियेगा...तो राम-राम सरकार! बड़ी तकलीफ दी...दया रखना मालिक! जग्गू की बात सच निकले तो कुछ इनाम दे देना गरीब को..." हँसता हुआ जग्गू चला गया।

सजीवनलाल ने उसे रोकना चाहा, मगर वह रुका नहीं। सजीवनलाल चकिताश्चर्य में डूबे खड़े रह गये। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि वास्तव में उन्हें धोखा दिया गया है या यह आदमी जो अपने को जग्गू लोहार कहता था, मक्कार है।

पास से जाते हुए एक दूसरे आदमी को रोका उन्होंने।

"कहिये !" वह आदमी रुक कर बोला।

"एक बात बताओगे ?" सजीवन लाल ने पूछा।

"एक नहीं, दो-चार पूछिये...न बताऊँ तो नाम नहीं। आप कौन हैं और क्या पूछना चाहते हैं ?" वह आदमी सजीवनलाल को पहचानता नहीं था।

"संपत की लड़की क्या अन्धी है ?" सजीवनलाल ने धड़कते कलेजे से पूछा।

"अन्धी है तो क्या, क्या अन्धे लोगों को भगवान ने नहीं बनाया ?...आप भी कैसी बात पूछ रहे हैं ! आप को पहले नहीं मालूम था क्या ?...अंधेरी रात और अन्धी आँखें कभी छिपाने से छिप सकी हैं ?" कहता हुआ वह व्यक्ति हँस पड़ा।

अब सजीवनलाल को विश्वास हो गया कि उनकी बहू वास्तव में अन्धी है और लोगों ने उनसे यह भेद छिपा कर उन्हें गहरा धोखा दिया है।

"आपको बहुत आश्चर्य हो रहा है...सीधी सी बात है, जब कोई शादी करने पर तैयार नहीं हुआ तो छिपाकर शादी कर दी गई...ये तो जुआ है श्रीमान ! आपका पासा उल्टा पड़ गया..." वह व्यक्ति हँसता हुआ चला गया।

सजीवन लाल तारापुर गाँव के बहुत बड़े जमींदार थे। लोग उनके डर से काँपा करते थे। इतने बड़े जमींदार को संपत जैसा मामूली किसान धोखा दे, यह कितने शर्म की बात है।

क्रोध से सजीवनलाल की आँखें जल उठीं। इतने बड़े विश्वासघात को वे किसी भी दशा में सहन नहीं कर सकते थे। वे क्रोध से बड़बड़ाते हुए विवाह-मंडप में आये।

भाँवरे समाप्त थीं, सात फेरे पड़ चुके थे। अब वर-बधू आस-पास बैठे पंडितों का मंत्रोच्चार सुन रहे थे।

"बन्द करो यह सब...विवाह मंडप पर पहुँचकर सजीवनलाल चिल्लाये—यह शादी नहीं हो सकती...बेटा रामदयाल गँठ बन्धन तोड़ कर उठ आओ...बारात वापस जायगी..."

दुल्हे के पिता की तड़प सुनकर सब लोग भयभीत हो उठे। वधू पक्ष वालों की तो सिट्टी पिट्टी गुम हो गयी। चारों तरफ शोरगुल मच गया।

सजीवनलाल चिल्ला-चिल्लाकर घराती-बराती सबसे कहने लगे—"मुझे धोखा दिया गया...संपत की लड़की अन्धी है...यह शादी नहीं हो सकती...बारात वापस जायगी...मैं धोखेबाजों का सर तोड़ दूँगा। इन लोगों ने मुझे समझा क्या है?.. लड़की अन्धी थी तो बताया क्यों नहीं?...अन्धों-लगड़ों के लिये क्या मेरी हवेली थी?..."

"क्या हुआ सजीवनलाल जी?" किसी ने हमदर्दी जाहिर की।

तो सजीवनलाल के क्रोध में आहुति पड़ गयी।

"सब चौपट हो गया सेठ चन्दूलाल! इन गँवारों उजड्डों के फेर में पड़कर मैं तबाह हो गया। इन लोगों ने मेरी इज्जत लूट ली...भला अंधी को बहू बनाकर मैं क्या करूँगा? मेरे लड़के की आँखें इतनी बड़ी-बड़ी और बहू की आँखें अन्धी—अच्छा तमाशा रहा....मेरा घर बन गया! अब तुम लोग खड़े खड़े तमाशा क्या देख रहे हो? रामदयाल तू मेरा मुँह क्या ताक रहा है..."

तभी किसी ने कहा—"अब क्या हो सकता है, शादी तो हो गयी!"

सुनकर सजीवनलाल तड़प उठे—"शादी गयी भाड़ में...हमारा इतना रुपया बरबाद हो गया, तुम लोगों को शादी की सूझी है...चलो सब लोग, डेरा-डन्डा उठाओ..."

उसी समय बूढ़े संपत ने दौड़कर सजीवनलाल का पैर पकड़ लिया—"मुझे क्षमा करो समधी! गलती हो गयी जो तुम्हें बताया नहीं..."

"गलती हो गयी तो उसका फल भोगो...मेरे बेटे की जिन्दगी खराब हो जायेगी..."

"मेरी अन्धी बेटी का भाग्य न लूटो समधो ! तुम्हारे दरवाजे पर बाँदी बनकर पड़ी रहेगी..." करुण स्वर में संपत बोला।

"जिसको आँख ही नहीं, वह बाँदी क्या बनेगी ! दूसरों की सेवा करने के बदले स्वयं अपनी ही सेवा कराने लगेगी...छोड़ो मेरा पैर। एक तो गरीब जानकर भी इसकी बेटी ब्याहने आये, तिसपर से यह धोखेबाजी !" कहकर सजीवनलाल ने पैर पकड़े संपत को धक्का देकर दूर ढकेल दिया।

बूढ़ा संपत अपमान का घूँट पीकर भी निश्चल रहा। सजीवनलाल से निराश होकर उसने उनके बेटे रामदयाल का पैर जा पकड़ा।

बोला—"तुम तो मान जाओ बबुआ ! बूढ़े की इज्जत मत लूटो ! तुम एक नहीं, चार शादियाँ कर लेना, मगर इस गरीब के दरवाजे पर आकर लौटकर न जाओ..."

रामदयाल अभी जवान था। हृदय में कितनी ही आशायें उमड़ रही थी तो भला वह एक अन्धी को पत्नी कैसे बनाता !

उसने अत्यन्त रुष्ट स्वर में कहा—"मुझसे क्या कहते हो, जो कुछ कहना हो पिताजी से कहो। विश्वासघात की भी एक सीमा होती है। मैं कुछ नहीं कर सकता। तुम्हारे ऊपर अहसान कर मैं अपनी जिन्दगी बरबाद कर लूँ, इतना मैं भावुक नहीं...चलिये पिताजी।"

बरात में खलबली मच गयी। सब जाने की तैयारी करने लगे। संपत के रिश्तेदारों ने भी सजीवनलाल को मनाने की बहुत कोशिश की, मगर वे नहीं माने।

बारात वापस चली गयी।

संपत जैसे पागल हो गया। उसकी सारी आशाओं पर पानी पड़ गया था। क्षुब्ध होकर अपनी अन्धी बेटी मुरली की शादी का प्रबन्ध किया

था और वर पक्ष वालों को उसने उसके अन्धे होने की बात भी नहीं बताई थी, क्योंकि अब तक कोई भी ऐसा दयावान नहीं मिला था, जो उस अन्धी से सहर्ष शादी करता। इसलिये भेद छिपा कर शादी करने की कोशिश की गई।

पुरुष अन्धा हो या लँगड़ा, उसकी शादी नहीं रुक सकती। किसी न किसी युवती का दुर्भाग्य उसे ब्याही पटकता है।

मगर हाय री नारी!—

नारी का एक ज़रा-सा अवगुण भी समाज की दृष्टि में असहनीय होता है। पग-पग पर पिसी जाती हुई नारी को कहीं त्राण नहीं। पुरुष चाहे कितना भी कुरूप, कितना भी मन्द बुद्धि, कितना भी चरित्रहीन हो, परन्तु नारी की तुलना में वह हमेशा उच्च है।

आधुनिक पुरुष-समाज ने नारी की बड़ी दुर्गति कर डाली है।

बेचारा संपत अपना सब कुछ लुटाकर कटे पेड़-सा चारपाई पर गिर पड़ा है। बूढ़ा शरीर सदमे का झोंका नहीं सहन कर पा रहा है। सांस छाती की उभरी-उभरी हड्डियों के बीच समा नहीं रही है। इतना व्याकुल हो रहा है वह कि मौत आ जाय तो तुरन्त उससे जा लिपटे।

संपत के सभी रिश्तेदार उसके चारों ओर खड़े थे। किसी का घर जल रहा था और आग तापने के लिए इतने लोग उपस्थित थे। सहानुभूति प्रदर्शित करने वाला एक भी व्यक्ति वहाँ न था। आत्मीय और रिश्तेदार सभी तमाशा देखने वाले बन गये थे।

विपत्ति के समय आत्मीय जनों की सहानुभूति पाकर मानव अपना कष्ट भूल जाता है। परन्तु जब सगे संबंधी घाव पर मरहम लगाना छोड़ कर नमक छिड़कने लगते हैं तो वह असह्य हो जाता है।

इस समय संपत की दुर्दशा पर लोग आंसू बहाने के बदले व्यंग की वर्षा कर रहे हैं।

एक ने कहा—"क्यों जी संपत राम ! क्या तुमने यह नहीं बताया था कि मुरली अंधी है ?"

"बताते कैसे, कोई जनम की अंधी थोड़े ही है...बचपन में बीमारी से आँखें जाती रहीं तो कभी न कभी ठीक हो ही जाती। इस में कहने सुनने की क्या बात है ?" दूसरे ने व्यंग किया।

"यह तो, सरासर धोखेबाजी रही। अन्धी चाहे जन्म से हो चाहे बचपन से, सजीवनलाल को बताना तो चाहिये ही था..."

"बता देते तो जानबूझ कर गले में फूटी ढोल कौन लटकाना चाहता !...लड़की को कोई जन्म भर तक घर में बिठा कर पालेगा नहीं...संपत ने जो कुछ किया, बिलकुल ठीक किया।" चौथे ने थोड़ी सहानुभूति तो दिखाई, मगर उसमें व्यंग का ही पुट अधिक था।

"मगर सजीवनलाल को मालूम कैसे हुआ ?" पहले ने आश्चर्य प्रकट किया।

"किसी ने कान फूँक दिया होगा..." दूसरे ने कहा।

"सच पूछिये तो इस गाँव में कनफुकवे ही ज्यादा हैं"

"ऐसे लोग तो सभी जगह होते हैं।" तीसरे ने कहा—"एक का अवगुण दूसरों के कानों तक पहुँचाना ही इनका पेशा है।"

"पेशा तो वह अच्छा होता है, जिससे कुछ लाभ हो। बेकार जबान खुजलाने से तो कुछ मिलता नहीं..."

संपत के ताजा घावों पर नमक छिड़कते जब लोग हार गये तो एक एक चलते बने।

संपत पीड़ा का सागर अपने हृदय में संजोये चुपचाप चारपाई पर पड़ा रहा। व्यंग की बौछार से तड़प-तड़प उठने पर भी बेचारा एक ठंडी साँस तक नहीं ले सका। मन में असह्य चिन्ता का बोझ लादे, आग की लपटों में खामोश जलता रहा। प्रचंड अग्नि की लपटों पर

किसी ने एक बूँद जल भी नहीं डाला। सब घी ही छोड़ने वाले निकले। किसी ने सहानुभूति के दो शब्द भी नहीं कहा कि उस आफत के मारे को कुछ तसल्ली होती।

थोड़ी देर पहले जो घर गाँव की लालटेनों से आलोकित हो रहा था, वहीं अब प्रगाढ़ अन्धकार के बीच एक भयानक खँडहर सा दृष्टिगोचर हो रहा था। हँसी और खुशी गम की खामोशी में बदल गई। आकाश पर झिलमिलाते हुए छोटे-छोटे तारे बड़ा-बड़ा मजाक कर रहे थे, मगर चाँद बेचारा संवत के शोक से सन्तप्त होकर कहीं मुँह छिपाये पड़ा था।

संवत की बूढ़ी स्त्री घर के आँगन में बिलख-बिलखकर रो रही थी। उसकी अभागिन बेटी का भाग्य लौटकर भी लौट गया था। बारह बरस बाद घूरे के दिन भी फिरते हैं परन्तु मुरली तो इस समय सोलह की थी।

अच्छी मुरली के भाग्य पर व्यंग के आँसू बहाने के लिये उसकी माँ के पास गाँव की बड़ी-बूढ़ियों का जमघट लगा हुआ था। किसी के मुँह में तोलों भर पान, किसी के शरीर पर मन दो मन सोने के गहने, किसी की आँखें कटहल के कोये जैसी तो किसी की आँखें फटा गूलर जैसी सुर्ख, दानेदार, किसी की नाक जुते खेत जैसी सपाट और किसी-किसी की गाँव के घूरे जैसी ऊँची, किसी के दाँत मोती के दाने जैसे चमकदार और किसी के भुट्टे के दाने जैसे पीले और किसी के मूली जैसे लम्बे, किसी के बाल तेल से तरबतर और किसी के सर पर सेरों धूल, किसी का मुँह टमाटर जैसा चिकना और किसी का कटहल जैसा ऊबड़-खाबड़ —

एक जो देखने में गोरी, कद की लम्बी था, बड़े हाव-भाव से बोली—
"ए बुआ! ऐसी मुँहजली बारात देखी न सुना। न हाथी न घोड़ा, गदहे जैसे बाराती सैकड़ों...कहने को जमीदार हैं, बिना मुँह धोये बेटा ब्याहने चले आये..."

"धोने लायक मुँह हो तब तो धोयेंगे" बूढ़ी बुआ अपने चेहरे की

झुर्रियों पर एक विभत्स मुस्कान लाकर बोली—"अच्छा हुआ बिन ब्याहे चले गये। बेटे का ब्याह नहीं करने आये थे, ठट्ठा करने आये थे। गहना गुरिया एक नहीं नाम जमींदार। लड़की अन्धी थी तो क्या हुआ, दुलहा भी तो घोड़मुँहा था...अच्छा हुआ कि लौट गये दाढ़ीजार! मुरली की आँखें नहीं हैं तो क्या सरग की परी जैसा रूप तो है। उन कमीनों की आँखें फूट गयी थीं रे बिटिया! परी छोड़कर अब कोई भैंस बाँधेंगे अपने गले में....हे राम! सीधे लोगों को तू भी सीधा करता है। टेढ़े लोगों पर तो तेरी निगाह ही नहीं जाती—"

"मनतोरा मौसी! तुम्हारे राम अब बूढ़े हो चले। आँखों से कम दिखाई पड़ता है, तभी तो टेढ़े और सीधे को पहचान नहीं कर पाते..." एक ने कहा—"मुरली का भाग्य जग गया मौसी! उन कसाईयों के पाले पड़ती तो वह हलाल हो जाती दूसरे दिन—समझो न! इन मर्दों की बात न्यारी होती है। बदन में कोढ़ हो या खाज ब्याहने के लिये उनको परी ही चाहिये। औरत में जरा-सी खोट सुन लो तो बैल की तरह पगहा-तुड़ाकर, बिगड़कर नौ-दो ग्यारह हो गये..."

"सुनती हो पपीता की बहू! यह चमक चम्पी क्या कह रही है! बैल की तरह पगहा तुड़ाकर...खूब कहा—ये मरद बैल ही तो होते हैं। इसका मरद भी कोई बैल ही होगा। दिन भर खेत जोतेगा और रात को यह उसे भूसा खिलायेगी—वाह रे चमक चम्पी! ऐसी बोल बोलती है मुई।"

"मुये तुम्हारे दादा मनतोरा मौसी! गाली तो ऐसा देती है, जानो मुँह से फूल बरसते हों। बुढ़ापा आ गया मगर जीभ की जवानी न गई! अपने समय में बबूल के काँटे जैसी नोकदार रही होगी तुम!..."

"पूछो मत बहिन! बबूल के काँटे तो ऐसे होते हैं, जो गड़ने को गड़ जाते हैं और निकलने लगते हैं तो कलेजा तक निकाल लेते हैं...

इनसे अच्छे तो गूलर के फूल होते हैं, जो बेचारे आँख से दिखते तक नहीं...”

“गूलर के फूल तो हमने देखा नहीं, अलबत्ता गूलर की तरकारी हमने खायी है। गरम मसाला और प्याज डालकर बनती है। खाने में इतनी सवाददार होती है कि...”

“कि एकबार खाले तो जिन्दगी भर तक पछताता रहे, क्यों मनतोरा मौसी!...मगर एक बात है गूलर के जब फूल दिखाई नहीं पड़ते तो फल क्यों दिखाई पड़ जाते हैं!...”

“हरे परीता की बहू! तुम सब बात ही करती रहोगी या घर दुआर की भी कुछ फिकर है! थाला मारकर ऐसी बैठ गयी हो तुम लोग कि जिसका नाम नहीं। बरगद के पेड़ बिना काटे उखड़ते नहीं।...मालूम है, रात रानी को अब नींद आना ही चाहती है। भोर का मुर्गा कब से चिल्ला रहा है। तुम लोग आई थी मुरली की माँ को धीरज बँधाने और यहाँ आकर बुढ़िया पुरान खोल, बाचने लगी...”

सुनते ही सबकी सब उठ खड़ी हुईं और रोती हुई मुरली की माँ को छोड़कर चली गईं।

सुनसान होते ही मुरली की माँ का रुदन बढ़ गया। हृदय की करुणा आँखों से आँसू बनकर निकलने लगी।

बेचारी मुरली!

आँख से अन्धी मगर सोलह साल का प्रकाश अपने शरीर पर लिये खामोश थी। दुख पर रोने का भी आधार लुट गया था। अब खामोशी की आग में जलने के सिवा और चारा ही क्या था! बारात आने पर उसकी सहेलियाँ आयी थी और उसे जली कटी सुनाकर चली गयी थीं। मुरली के भाग्य पर पहले उन्हें डाह थी, क्योंकि उसका विवाह एक धनी

जमींदार के यहाँ होने जा रहा था मगर अब उसके दुर्भाग्य पर वे बहुत प्रसन्न थीं।

स्त्रियों में, खासकर अपढ़ और गँवारिनियों में एक दूसरे को उन्नति देखकर डाह करने की आदत हो जाती है। कुछ पढ़ी लिखी बहनें भी इस रोग से ग्रसित हैं। अपने बहुत से दुर्गुणों द्वारा नारी जाति दिन पर दिन अधोगति को प्राप्त होती जा रही है। मुरली को सान्त्वना देने की बात तो दूर रही, कोई उसकी ओर आँखों में समवेदना भरकर देख भी नहीं सकी।

अपनी सहेलियों की इस निरंकुशता पर बेचारी मुरली तड़प-तड़प कर रह गयी।

अब तो उसके भाग्य में ज़िन्दगी भर रोना ही रोना लिखा था।

नारी के लिये यह कितनी करुणा जनक अवस्था होती है कि उसका पति आग के सात फेरे लगाकर भी उसका साथ छोड़ दे।

स्त्री चाहे कुरूप हो अथवा सुन्दरी, अन्धी हो या बड़ी-बड़ी आँखों वाली, धनी घर की हो या गरीब झोपड़ी की, सभी शादी के पहले ससुराल की रंगीन कल्पना में खोकर सुनहरी उमंगता रहती है। और जब सपने टूटकर बिखर जाते हैं तो नारी वर्षा की बूँद की तरह बरस पड़ती है और आग की लपटों की तरह धधकती रह जाती है तमाम उम्र।

Rill ... I am shy worried too

सवेरे के आठ बजे हैं। छोटा-सा गाँव, कमाने-खाने में व्यस्त है। खेतों में हल चल रहे हैं और पसीने-पसीने हुए किसान तपती धूप में भी चैन नहीं ले रहे हैं। किसानों की स्त्रियां भी इस काम में मनोयोग से अपने पतियों को सहारा दे रही हैं, जिसे देखकर ऐसा लगता है, जैसे नारी और पुरुष के सहयोग के बिना संसार के सभी कार्य अपूर्ण रह जाते हैं। यह ठीक भी है, क्यों कि नर शक्ति है तो नारी प्रेरणा। नर जीवन है तो नारी उसकी गति।

गाँव के किनारे जग्गू कोहार का घर है। कच्चा मकान, खपरैल का छाजन और दरवाजे के सामने पड़े हुए ढेर-के ढेर मिट्टी के बर्तन।

सामने चाक पर गीली मिट्टी रखते हुए जग्गू हँड़िया बना रहा था और उसकी पत्नी अनूपा चाक पर से उतरी हुई हँड़ियों को सँवारती जा रही थी।

बम्मू नाटे कद का था। रंग काला, आँखें भूरी, दांत पीले और बढ़े बालों पर गीली मिट्टी।

"सुनती हो..." बम्मू ने चाक पर से हँड़िया उतार कर अनूरा के हाथ पर देते हुए कहा।

"सुनाओ न!...मगर सुनाने के पहले हाथ ज़रा तेज़ चलाओ। कल पण्डिताईन के यहाँ कितना सामान देना है—तीन सौ तो हँड़िया ही देनी है...कहो क्या कहते हो?" अनूरा ने कहा।

चार बच्चों की माँ थी अनूरा मगर एक भी बच्चा जीवित न था। चार बच्चों के शोक में पागल अनूरा का स्वभाव चिड़चिड़ा हो गया था। मुख पर एक दैन्य विमलता थी, जिससे उसका कुछ-कुछ सुन्दर मुँह बोलते समय अजीब भयानक ढँग का हो जाता था।

"कहना तो कुछ नहीं है।" बम्मू बोला।

"तब क्या बकवाद कर रहे हो?" अनूरा ने तमक कर कहा।

"कहना तो बहुत कुछ था..."

"बहुत कुछ में से दो-चार ही कह डालो..."

"इतनी दूर क्यों बैठी हो? तनिक और पास खिसक आओ। बोल भी नहीं रही हो—तुम्हारी आवाज़ सुनने के लिये मेरे कान कुलबुला रहे हैं..."

"इतना बोल तो रही हूँ। तुम्हारी तरह भोंपे सी आवाज़ मेरी नहीं, जो दिन रात बजती रहे...दूर भी कहाँ हूँ, पास ही तो बैठी हूँ? तुम्हारे चाक पर आकर बैठ जाऊँ क्या?..."

"चाक पर आ बैठी तब तो चकवेनवा का मज़ा मिल जायगा। घूमते-घूमते तीनों त्रिलोक घूम जाओगी..." कहकर बम्मू हँसने लगा।

तो अनूरा बिगड़ पड़ी—"तिरलोक घुमाने की रहने दो। मैं तो तुम्हारा लोक ही घूमते-घूमते थक गया हूँ। तुम को कुछ परवार की भी

फिकर रहती है ? संपत के यहाँ जो रुपये बाकी हैं। कभी माँगने भी गये थे ?...आज महीनों हो गये बागत लौटे...."

"माँगूगा न, तुम घबड़ाती क्यों हो ? संपत तो अभी खुद ही मर रहा है, रुपया क्या देगा ?.. बेचारे चले थे जमींदार के यहाँ शादी करने— ऐसी चाल चली कि बच्चा खून के आँसू रो पड़े। उस दिन बड़ी अकड़ दिखा रहे थे। अब सारी हेकड़ी हवा हो गयी। अब कभी जग्गू लोहार के मुँह लगे तो कहना। बड़े-बड़ों को रास्ता दिखा दिया है, इस संपत की ऐसी-तैसी..."

"बेचारे का बना बनाया काम बिगाड़ दिया और अब बड़े हनुमान जी बनने लगे। ऐसा तो कोई दुश्मन भी नहीं करता। फिर संपत तो अपने गाँव का आदमी है। सीधा तो इतना है, जैसे ताड़ का पेड़। तुम्हारे ही पाप से तो मेरे बच्चे इतने-इतने बड़े होकर मर गये..."

"तुम्हारे बच्चे मर जाते हैं तो मैं करूँ ? उसमें मेरा क्या दोष है ? मैं पाप ही कौन-सा करता हूँ ?...संपत ने बात छिपा कर अन्धी-लड़की की शादी करने की ठानी थी, तो मैंने सजीवनलाल को होशियार कर दिया। यह पाप हुआ या पुण्य ?"

"तुम तो पता नहीं किसे पाप कहते हो और किसे पुण्य ! क्या तुमने संपत के साथ-दगाबाजी नहीं की ?..."

"दगाबाज के साथ दगाबाजी करना कोई गुनाह नहीं। संपत खुद धोखेबाज है। सीधे-सादे सजीवनलाल को अपनी अन्धी लड़की-दे रहा था। मैं ऐसा नहीं कि एक इन्सान को दूसरे इन्सान का गला काटते देख सकूँ..."

सुन कर अनूपा ने नाक-भौं चढ़ा लिये। जग्गू का तर्क उसे अप्रिय लगा। तीव्र स्वर में बोली वह—"मुझे चराने चले हो ?...बच्चे नहीं रहे तो क्या, चार-चार की माँ तो हूँ। तुमसे कम अक्ल मुझमें नहीं।

सजीवनलाल जमींदार हैं उनको कमी किस बात की है! संपत तो बेचारा गरीब है। इतना मुँहताज कि खाने को दाना भी नहीं मिलता। तुम्हारी खुराफात से तो मिट गया बेचारा! तुम पर ऐसी आफत आती तो तुमको कैसा लगता खट्टा या तीता!"

"आँखें तरेर कर मेरी ओर क्या देख रही हो! भगवान कसम! इतनी बड़ी-बड़ी आँखें हैं तुम्हारी कि देखकर डर लगता है। यह लो, तुम तन कर खड़ी हो गयीं, मानो हमले की तैयारी कर रही हो..."

सचमुच अनुरा सारा काम छोड़ कर लड़ाई की भीषण मुद्रा में तन कर खड़ी हो गयी थी।

नागिन-सी फुफकार कर बोली—"मेरी आँखों की, बड़ी तारीफ करते हो—तुम्हारी ही आँखें बड़ी अच्छी हैं जैसे काली हँडिया पर पड़ी हुई दो कौड़ियाँ। पाप को पाप कहते शर्म लगती है क्या तुम्हें? बड़े आये हो पुण्य कमाने वाले। पाप भी करते हो और आँखें भी दिखाते हो!"

"तुम तो बात-बात में रूठ जाती हो—" कम्मू ने बिनती करते हुए कहा—"भला मर्द औरत में ऐसी लड़ाई कभी अच्छी लगती है...अब तो माफ कर दो...तुम तो ऐसा बिगड़ती हो जैसे..."

"जैसे तैसे रहने दो...वह देखो, मुआ शंभू चला आ रहा है..."

"कहाँ!..." कम्मू ने सजग होते हुए पूछा।

"वह क्या हाथी-सा झूमता चला आ रहा है—" अनुरा ने मुँह बिचकाकर कहा—"इसकी सूरत ही देखकर मेरा सारा शरीर जल उठता है। ऐसी सूरत है, जैसे पका कटहल! घुग्घू जैसी आँखें हैं...तुम्हीं इससे बात करो! मुझे तो डर लगता है..." कहती हुई अनुरा उठकर झोपड़े में चली गयी।

कम्मू ने चाक चलाना बन्द कर दिया और सामने से आते हुए व्यक्ति की ओर एक टक देखने लगा।

आने वाला पास आ चुका था। उसके बदन का काला रंग सूर्य की रोशनी में अजीब ढंग से चमक रहा था। हाथ-पैर टेढ़े-मेढ़े थे। मुँह विचित्र रूप से भयानक था, जिस पर बड़े-बड़े मस्से उसके चेहरे की भयानकता को और भी बढ़ा देते थे। सर के बाल घुँघराले तो थे मगर भूरे। भयानक चेहरे पर छोटी छोटी कंजी आँखें, इतनी डरावनी लगती थीं कि कोई अपरिचित इन्सान उसको दिन में भी देख ले तो डर से थर-थर काँपने लगे।

"कहो भाई जग्गू, क्या हालचाल है ?" रुक कर उसने पूछा।

"ओहो! शंभू भैया...जुग-जुग जियो, अभी तुम्हारी ही चर्चा हो रही थी। बहुत दिन जियोगे भगवान कसम।" जग्गू ने जेब से बीड़ी निकालते हुए कहा।

"मेरी चर्चा कर रहे थे ?" शंभू ने जग्गू के पास बैठते हुए कहा—"किससे ? —अनूपा भाभी से ?...झूठे कहीं के, मैंने दूर से ही देखा था, अनूपा भाभी तनकर खड़ी थीं और तुम हाथ जोड़े गिड़गिड़ा रहे थे..."

"तुम तो बेकार की बात करते हो शंभू भैया।"

"खैर भाई, बेकार की ही बात सही। मैंने जो देखा, कह दिया। इसमें शरमाने की बात क्या है ? मर्द-औरत में झगड़ा तो होता ही रहता है...बीड़ी अकेले ही पिओगे ?"

"नहीं-नहीं, लो तुम भी पिओ...बीड़ी कौन सी बड़ी चीज है, पैसे में चार तो आती है..." जग्गू ने जेब से एक बीड़ी निकाल कर शंभू को देते हुए कहा।

शंभू ने बीड़ी सुलगाई और कश खींचकर तीता धुआँ निकालता हुआ बोला—"क्या बना रहे थे ? इतना टड़िया बनाकर क्या करोगे ?"

"पूछो मत शंभू भैया ! ब्याह करते हैं बड़े आदमी और मर जाते हैं हम गरीब लोग...देखा न पंडिताइन के यहां शादी है, सो पाँच सौ

हँड़िया, एक हजार पुरवा, दो हजार कसोरा और बहुत सा अल्लम गल्लम गढ़ कर देना है। रात-रात भर दोनों आदमी काम में जुटे रहते हैं। कोई तीसरा मददगार है भी नहीं...बड़ा परेशान हूँ शंभू भैया! हमारी परेशानी तुम क्या जान सकोगे?"

"अब लगे परेशानी का रोना रोने...ब्याह-शादी तो संसार में चलता ही रहता है।" शंभू ने कहा—"मगर बग्गू भाई, ब्याह तो बहुत देखे मगर सम्पत की बेटी की शादी में जैसा तूफान उठा, वैसा तो कहीं देखने में नहीं आया..."

"सम्पत तो पूरा दगाबाज है" बग्गू ने कहा—"अन्धी तो उसकी लड़की और चला था जमींदार के घर शादी करने..."

"सम्पत की दशा तुम नहीं समझते। अन्धी बेटी का ब्याह करना कितना कठिन होता है। और जानते ही हो कि मुन्नी की शादी कई-कई जगह लगकर छूट गयी थी। फिर सम्पत के लिये दूसरा रास्ता ही क्या था?"

"रास्ता कैसे नहीं था? कम से कम सजीवनलाल को सारी बात बता देनी चाहिये थी.. सीधे-सादे आदमी को धोखा देना क्या अच्छी बात है?"

"मैं जानता हूँ कि यह बात अच्छी नहीं, फिर भी सम्पत ने जो कुछ किया, वह बिलकुल ठीक किया...." शंभू ने कहा।

"बिलकुल ठीक किया? यह तुम कहते हो शंभू भैया! भगवान कसम, दूसरा कोई कहता तो उसको मजा चखा देता..." बग्गू ने कुछ क्रोध में आकर कहा।

शंभू का लम्बा चौड़ा भयानक कन्धा जोरों से हिला। बग्गू की आखिरी बात उसको लग गयी थी, तीर सी। आखिर था तो वह भी देहाती गँवार ही।

रूखे स्वर में बोला वह—"मजा क्या चखाओगे?...सम्पत ने मेरी राय से तो वह बात छिपाई थी..."

"वैसी राय तुमने क्यों दी? तुम यही चाहते थे न कि सजीवनलाल जैसे आदमी को अन्धी बहू मिल जाय?"

"सजीवनलाल धनी हैं। एक अन्धी बहू से उनका क्या बिगड़ता? वे तो दस-बीस बहुओं को बिठाकर जिन्दगी भर तक खिला सकते हैं। जिनके यहाँ चालीस गायें हैं, उनके यहाँ क्या एक अन्धी बहू नहीं पल सकती थी?...सब कुछ तो ठीक हो गया था, मगर अपने गाँव के ही किसी हरामजादे ने बंटाधार कर दिया..."

"क्या बंटाधार कर दिया?" जग्गू अपने लिये हरामजादे का सम्बोधन सुनकर उबल पड़ा—"किसी परोपकारी ने ही ऐसा किया होगा। उसको हरामजादा क्यों कहते हो?"

"तो तुमको चोट क्यों लगती है?"

"मुझको क्या चोट लगेगी शंभू भैया! तुम तो बेकार गुस्सा कर रहे हो..." शंभू को गर्म होता देखकर जग्गू नर्म पड़ गया और लगा चापलूसी की बातें करने—"नाराज हो गये क्या शंभू भैया! अरे किसी बदमाश ने कर दी होगी खुराफात—उसे तुम हरामजादा कहो या नवाबजादा, भगवान कसम, मैं क्यों बुरा मानने लगा? तुम तो लड़ने को तैयार हो गये। भला तुमसे लड़ाई लड़के मैं क्या करूँगा?"

लड़ाई के लिये उठे हुए शंभू के कंधे नीचे हो गये। तनी हुई छोटी-छोटी आँखें उतार पर आ गईं।

गाँव में शंभू की शक्ति से लोहा लेने वाला कोई नहीं था। सभी उससे डरते थे। अपनी भयानक शकल से तो वह योंही डरावना लगता था, दूसरे उसके शरीर में ताकत भी खूब थी।

जग्गू की चापलूसी से उसका मिजाज ठंडा हुआ तो वह बोला—"किसी का खरी-खोटा सुनने का मैं आदी नहीं। बात-बात में मुझे गुस्सा चढ़ जाता है!"

"देखो शंभू भैया ! मुरली की शादी तो अब हो नहीं सकती। संपत से कहो कि उसे गाँव के ही किसी—आदमी को सौंप दे। हमारा गाँव तो बड़ा दयालु है और मुरली अंधी है तो क्या, उसकी सूरत लाखों में एक है। उसे पाकर कौन खुश नहीं होगा ?"

"किसको सौंप दे ?"

"मुझी को सौंप दो...बड़े दुलार से रक्खूँगा। कभी कोई तकलीफ हो तो कहना..."

"बहन बनाकर रख सकोगे उसको ?" शंभू को फिर तैश आता जा रहा था।

"बहन !...बहन तो सैकड़ों मिल सकती हैं शंभू भैया !...मैं तो उसे घर में डालने की बात कह रहा था..." ही-ही हँसते हुए बग्गू ने कहा।

"तुम लुच्चे हो..." शंभू ने क्रोध से कहा—"ऐसा कहते तुम्हें शर्म नहीं आती ?"

"वाह-वाह ! भगवान कसम, ऐसी गाली देते हो शंभू भैया कि दिल गद्गद हो जाता है....लो, वह मुरली ही तो चली आ रही है। ऐसा टटोलती है, जैसे हवा में कुछ लिख रही हो..."

मुरली को देखकर बग्गू सब कुछ भूल गया। ऐसा भाव प्रदर्शित किया जैसे उस अन्धी बालिका के प्रति उसकी अगाध सहानुभूति है। संपत को दगाबाज कहने वाला बग्गू उसकी बेटी की अन्धी आँखों पर नहीं, उसके शरीर के सौन्दर्य की ओर आकर्षित था।

बग्गू उठकर खड़ा हो गया। जोर से पुकारा—"मुरली ओ मुरली ! जरा इधर से ही आना..."

पुकार सुनकर मुरली रुक गयी। कान से पुकारने वाले की आवाज पहचान कर वह घूम पड़ी और पास आकर बोली—"बग्गू भैया हो क्या ?...किसलिये बुलाया ?...और कौन-कौन है ? भाभी तो मजे में हैं ?"

"आओ मुरली ! आओ...बड़े दिन पर दिखाई पड़ी हो, जैसे अमावस की अँधियारी के बाद पतला-पतला चाँद उगा हो...कहाँ रहती हो, क्या करती हो ?...कुछ समझ में नहीं आता। तुम्हारी एक झलक पाने के लिये आँखें दिन-रात चकोर बनी रहती हैं मगर तुम ऐसी हो गयी हो कि भगवान कसम, वैसा कोई क्या होगा !"

"ऐसा क्यों कहते हो बग्गू भैया ! तबियत अच्छी नहीं रहती थी, सो पड़ी-पड़ी खाट तोड़ रही थी...." मुरली ने कहा।

"बीमारी में खाट तो तोड़ना ही पड़ता है"—बग्गू भयानक रूप से हँसकर बोला—"अब तो ठीक हो न ? या अब भी कोई बीमारी बच रही है ? बुखार की तो ऐसी गोली अपने पास है कि एक ही से खाट का टूटना बन्द !"

"अब तो ठीक हूँ भैया ! चलने-फिरने लगी हूँ तो समझो यही बहुत है—अब चलती हूँ..."

"अरे ठहरो भी मुरली ! काम करना है क्या कुछ ? टटोल-टटोल कर काम करने से क्या फायदा ? अपनी आँखें नहीं हैं तो किसी दूसरे की लेकर घर बसा लो। सच जानो जगमग-जगमग रोशनी से दिल भर जायगा तुम्हारा हम तो तुम्हारे लिये हमेशा तैयार हैं...बताती हो सेवा ?"

शंभू अब तक चुपचाप बैठा हुआ था। बग्गू की बातें उसको बहुत बुरी लग रही थीं। फिर भी अग्रसर होकर व्यर्थ की लड़ाई मोल लेने वाला आदमी वह नहीं था।

मुरली भी बग्गू की अस्त-व्यस्त बातों से विचलित हो उठी थी। असहाय थी वह, अतः खून का घूँट पीकर खामोश रह गयी। वह सब कुछ समझती। इतनी नादान तो नहीं कि आँख के साथ अपनी बुद्धि से भी वह काम न ले सकती हो।

"तो मंजूर है मुरली !" मुरली का हाथ पकड़कर बग्गू ने पूछा— "रानी बना दूँगा, रानी !"

मुरली चौंककर दो पग पीछे हट गयी। झटक कर अपना हाथ छुड़ा लिया उसने।

सहमकर बोली—"यह क्या करते हो बग्गू भैया !"

"वही, जो किया जाता है ! नाखुश हो गयीं बस जरा सी बात में ! ऐसा तो होता ही रहता है..." बग्गू ठठाकर हँसने लगा।

शंभू की आँखें चढ़ गयीं थीं। बग्गू का व्यवहार देखकर उसका टेढ़ा-मेढ़ा शरीर और भी विकृत हो गया था।

मुरली रुआँसी होकर बोली—"तुम्हें शरम नहीं आती बग्गू भैया ! किस्मत ने तो यों ही सताया है....फिर सताये हुए को क्यों सताते हो !..." कहकर मुरली जाने लगी।

"तुम तो रूठ गई मुरली। भगवान कसम, मैं तो यों ही कह रहा था।...रुको तो जरा, यों रूठकर मत जाओ..."

शंभू उठकर बग्गू के सामने आ खड़ा हुआ। जलती आँखों से उसने बग्गू की ओर देखा।

उसको देखकर इस तरह चौंक पड़ा जैसे अँधेरी रात में नजरों के सामने भूत आ गया हो।

गिड़गिड़ाकर बोला—"ओ हो शंभू भैया, तुम अभी तक हो ! भगवान कसम, मैंने समझा तुम चले गये। नजर का कसूर है भैया। तुम खड़े रहे और मुझे दिखाई ही न पड़े। या तो तुम अलोपी विद्या जानते हो या मुझे दिनौंधी होने लगी है..."

बग्गू की बातें सुनकर शंभू का क्रोध कम नहीं हुआ। वह रुष्ट स्वर में बोला—"मैं नहीं जानता था कि तुम इतने नीच हो। मुरली को छेड़ते तुम्हें शरम नहीं आती !"

"शरम तो इतनी आती है शंभू भैया कि क्या बताऊँ तुमसे। मगर शरमाते-शरमाते भी इतना कह गया। बुरा लगा हो तो माफ करना शंभू भैया!...नीच-कीच क्यों कहते हो?"

"नीच तो तुम बहुत बड़े हो"— शंभू गरजकर बोला—"अगर तुमने फिर कभी मुरली को छेड़ा तो अच्छा न होगा। हड्डी-पसली तोड़कर चटनी न बना दिया तो कहना....मैं तुम्हारी एक-एक नस पहचानता हूँ। और तुम मुझे भी पहचानते ही होगे?..."

"खूब पहचानता हूँ!" बग्गू दाँत पीसकर बोला—"तुझको कौन नहीं पहचानता। साँप के डँसने की दवा है मगर शंभू भैया के दाँतों का जहर उतारने की कोई दवा नहीं। हाथ-पैर तोड़ने की क्या बात है?...तुम्हारी रग-रग तो पहले ही टूट चुकी है..."

भीतर से अनूपा भी लड़ाई में भाग लेने आ पहुँची।

हाथ मटकाकर बग्गू से बोली—"क्या है बो? क्या बात है, बो इतना उछल कूद कर रहे हो?"

"देख रही हो न! ये शंभू भैया मुरली के कारण मेरे ऊपर गरम हो रहे हैं। मैंने साफ कह दिया कि मुरली अच्छी है, उसे बुरे रास्ते पर ले जाकर कौन सी बहादुरी करोगे? किसी आँख वाले को आँख दिखाओ तब मजा...."

"तो यह बात है!" अनूपा उँगलियाँ चटकाती हुई बोली—"वाहरे जमाना। गाँव घर की बेटी को जवान होते ही लुटेरे लग गये..."

"देखो न माँ! खुद मुरली को छेड़ दिया और जब वह बचने लगी तो लगे मुझको ही डाँटने—"

"मैं तुमको हजार बार कहती हूँ कि ऐसे आदमियों से दूर [illegible] से तुम भला मेरी बात कब मानने लगे? मैं देख रही हूँ कि तुम अपने

इज्जत आवारों का साथ करके मिटाते जा रहे हो। देख लेना, पछताओगी किसी दिन तब मेरा नाम लेकर आँसू मत बहाना..."

"तुम भी तो अपने मर्द का ही पक्ष लोगी—" शंभू क्रोध से जलकर बोला—"आवारा कहो या बदमाश, अगर तुम दोनों में से कोई भी मेरे रास्ते में अड़ा तो उसकी खैर नहीं...इस मरियल जग्गू में इतनी ताकत नहीं कि मेरा एक भी घूँसा सह सके..."

"जाओ-जाओ बड़े आये हो आँख दिखाने वाले.. ऐसी-ऐसी गूजर जैसी आँखें हमने बहुत-सी देखी हैं। बस सीधे-सीधे चले जाओ अपना टेढ़ा-मेढ़ा शरीर लेकर। यहाँ क्या करने आते हो? दुनिया में मरने की और जगह नहीं क्या? दुनिया भर के तालाब सूख गये तो अनूरा की हाँड़ी में [illegible] मरने चले आये।" अनूरा दाँत पीसती हुई बोली।

"भगवान कसम शंभू भैया जिस हाँड़ी में डुबकी लेंगे वह भी काली हो जायगी और कोई उसे दो कौड़ी को भी नहीं पूछेगा।"—कहकर जग्गू हँसने लगा।

शंभू क्रोध का एक-एक घूँट पीकर खड़ा का खड़ा रह गया था। अनूरा के मुँह वह लगना नहीं चाहता था। जग्गू की शैतानी से वह क्रोधित था, परन्तु समय आने के पूर्व वह अपनी ताकत को नष्ट करना नहीं चाहता था।

"अब खड़े-खड़े मेरा मुँह क्या देख रहे हो?" अनूरा ने पुनः व्यंग बाण छोड़ा—"तुम्हारे मुँह से तो अच्छा ही मेरा है। खाने की इच्छा न हो तो बैठने के लिये चारपाई डाल दूँ। दस-बीस गालियाँ सुनकर पेट भर लेना तब जाना। तुम्हारे जैसे आदमी के लिये गाली कोई नयी चीज तो नहीं मगर अनूरा के मुँह से शहद सान कर गालियाँ निकलती हैं, इतनी मीठी-मीठी कि सुनकर कानों में रस घुल जायगा—सुनते हो जी? अपने शंभू भैया की

मेहमानों का इन्तजाम कर दो। वह काली सी हाँड़ी इधर दे दो। उसी में अपने सलोने देवर के लिये लौंग चूर का चावल पकाऊँगी..."

"आज अपने देवर का बड़ा ख्याल कर रही हो"—बग्गू बोला—"भगवान कसम, इतना ध्यान अगर भगवान का तुम करती तो खुश होकर वह छप्पड़ फाड़ दौलत दे देता...मगर वह तुम्हारा अलबेला देवर! देखने में जितना सुन्दर, व्यवहार में भी उतना ही अलबेला! अब कुछ मत कहना। उसकी आँखें देख रही हो न! चेहरे पर से उठकर कपार पर चढ़ी जा रही हैं। इतना गुस्सा भी किस काम का? हम तो शंभू भैया का पैर धोकर पीना चाहते हैं और शंभू भैया का दिमाग हवा में उड़ रहा है..."

"अजी ऐसे-ऐसे हवा में उड़ने वाले दिमाग तो बहुत देखे हैं!" अनूपा बोली—"अनूपा के दिमाग के आगे सब पानी भरें। उस सरपतुआ को नहीं देखा था—कैसी ऐंठ दिखाया था। एक ही डपट में सारी सिट्टी-पिट्टी गुम हो गयी। तुम्हारे शंभू भैया अपने को बड़ा भारी पहलवान समझते हैं। यह नहीं जानते कि अनूपा की एक ही जूती मरदों के सर के बाल सफाचट कर देती है, कल्लू नाई भी वैसा हजामत क्या बनायेगा!"

"तुम लोगों की जबान बहुत बढ़ गयी है। जबान को लगाम न लगा दिया तो मेरा नाम शंभू नहीं..." कहकर शंभू जाने लगा।

आज कल के गाँवों की दशा बड़ी ही दयनीय हो गयी है। अशिक्षा के कारण वहाँ किसी भी सुधार का होना कठिन है। अपढ़ ग्रामीण जरा जरा सी बात में एक दूसरे से झगड़ पड़ते हैं। कभी-कभी तो तनिक सी घटना को लेकर बड़े-बड़े तूफान मच जाते हैं।

गाँव की स्त्रियाँ भी अपनी अशिक्षा के कारण अपना सरस घरेलू जीवन बरबाद कर डालती हैं। अगर उनमें शिक्षा हो, तो उनका विषमय जीवन सुधा की धार-सा निर्मल एवं कल्याणकारी हो सकता है। पुरुषों

को अपना सबल साहचर्य देकर वे समाज का बहुत बड़ा कल्याण कर सकती हैं।

बग्गू से लड़-झगड़कर शंभू आगे बढ़ा तो सूनी पगडंडी के किनारे उदास मुरली को देखा।

लपक कर वह उसके पास गया।

बोला—"मुरली! तुम यहीं खड़ी हो? बड़ा दुख हुआ है न तुम्हें? जाने दो, दोनों लुच्चे हैं। उनकी बात का ख्याल मत करो...कुत्तों का तो काम ही भूँकना है...क्या कर रही हो खड़ी-खड़ी?"

मुरली ने सर्द आवाज में कहा—"मैं नहीं जानती थी कि तुम भी वही हो शंभू भैया! तुम्हारे देखते-देखते मुझ गरीब का इतना अपमान हो गया और तुम चुपचाप सब सुनते रहे। लोग कहते हैं, तुम्हारा शरीर सुन्दर नहीं, मगर दिल बहुत बड़ा है—तुम्हारे शरीर में बहुत बल है और दिल बहुत कोमल है...मगर मुझ अन्धी दुखिया की इज्जत लुटती रही, गाँव का कसाई जमाने के हाथों सताई क्यों मजबूर गाय का गला काटता रहा और तुम कुछ बोले भी नहीं शंभू भैया?..." कहते-कहते रोने लगी मुरली।

"रो मत मुरली!" शंभू ने मुरली के कंधे पर अपना हाथ रखकर थपथपाया—"मैं उन कमीनों से क्या कहता? दोनों के दोनों हराम-जादे हैं। मेरी आदत तो तुम जानती ही हो। बदन में ताकत ज्यादा है तो क्या, हर किसी से उलझ पड़ने पर सारी ताकत बरबाद हो जाती है...तालाब पर चल रही हो? चलो मैं भी चलता हूँ। तुम रंज क्यों करती हो?....चलो मेरे साथ..."

मुरली का हाथ पकड़ कर शंभू आगे बढ़ा। जिस तरह कटी हुई पतंग हवा के सहारे अलक्षित दिशा की ओर उड़ चलती है, उसी प्रकार शंभू का हाथ पकड़े हुये मुरली भी अस्त-व्यस्त सी चलती रही।

वि०

इस समय उसकी दशा विचित्र हो रही थी। अंधी आँखों में सागर उमड़ पड़ा था। दिल में भयानक हलचल मची हुई थी। जबान रहते हुए भी वह बेजबान अपने हृदय की पीड़ा व्यक्त नहीं कर पा रही थी। उसका शरीर इस प्रकार शिथिल हो गया था, जैसे सैकड़ों लाठी खाकर साँप का बदन हो जाता है।

तालाब के किनारे टूटी-फूटी सीढ़ी पर बैठता हुआ बोला शंभू—"बैठो मुरली! चिन्ता से सूखती जा रही हो। मालती की लता लहलहाती है तभी सुन्दर लगती है। सूख जाने पर तो उसमें न सुगन्ध रह जाती है और न हरियाली ही..."

मुरली बैठ गयी और दीर्घ निश्वास लेकर बोली—"अब तो जीते-जी ते तबियत ऊब गई शंभू भैया!...और मौत इतनी दूर रहती है कि अंधी आँखों से टटोलते-टटोलते वहाँ तक पहुँच पाना बहुत मुश्किल है। भगवान ने जितना दुख मुझे दिया है, उतना किसी दुश्मन को भी न दे..."

"भगवान की क्या बात कहती है मुरली!" शंभू दिलासा देते हुए बोला—"भगवान तो गरीबों को ही सताता है। अमीर लोग तो सोने-चाँदी से भगवान को पूजते हैं न! हम गरीबों के पास क्या रखा है! रास्ते के ईंट-पत्थरों को भगवान बनाकर पूजने से कहीं असली भगवान खुश होते हैं?....असली भगवान को खुश करने के लिये भगवान के भक्तों की पूजा करो! भगवान दिखाई तो पड़ता नहीं, भगवान के बनाये इन्सान दुख-दर्द से बिलख रहे हैं। उन्हीं की सेवा में मन लगाना अच्छा है...."

"बातों को इधर से उधर ले जाकर पटक देते हो तुम तो। मैं अपना दुखड़ा रो रही थी और तुम लगे भगवान और भक्तों का गुणगान करने..." मुरली ने कहा।

"दिल दुखाना नहीं चाहती तब क्या चाहती है ? बेकार बेकार की की बातें बोला करती है ?···जा मैं तेरी मदद नहीं करूँगा..."

"मत न करो...मेरा घर आ गया। मुझे देखकर ही भूरी गैया रंभाने लगी है...जाओ, छोड़कर जाना हो तो अब चले जाओ। दुनिया में कौन किसका साथ देता है ? अभी तो चिता तक साथ देने को कह रहे थे, अब बिगड़ कर भाग जाना चाहते हो ?...तुमको समझ गई हूँ शम्भू भैया ! लो तुम्हारी उँगली छोड़ देती हूँ..."

"यह तेरे साथ कौन है मुरली ?" मुरली की बूढ़ी माँ ने घर के दरवाजे पर से पुकारा-"शम्भू है क्या ? तो उसकी उँगली क्यों छोड़ रही है ? पकड़ कर खींच ला उसे यहीं। इतनी दूर आके लौटा कहाँ जा रहा है बेईमान।"

"चलो शम्भू भैया ! अब माँ का कहना तो नहीं टाल सकोगे तुम ?" मुरली ने शम्भू का हाथ पकड़ते हुए कहा।

"मैं भाग कहाँ रहा था ? तू ही—तो मुझे भगा रही थी—" कह कर शंभू मुरली के साथ घर के दरवाजे पर आ खड़ा हुआ।

बाहर चारपाई पर संपत लेटा हुआ था। आजकल वह बीमार था। चारपाई से उठ भी नहीं सकता था। दिन रात पड़े-पड़े कभी मुरली को और कभी अपनी को कोसा करता था। दुख के आवेग ने उसे पागल बना दिया था। इस समय सारी दुनिया को वह अपना दुश्मन समझता था।

शम्भू जाकर उसके पास चारपाई पर बैठ गया। धीरे से उसका बदन छू कर बोला—"तुम्हें तो बुखार है संपत काका ! बुढ़ापे का शरीर है न। कमजोरी पर सभी लोग अपना जोर आजमाते हैं।···कब से बुखार है ?"

"बुखार तो महीनों से है बेटा।" मुरली की माँ ने कहा—"बारात क्या लौटी उनकी एक एक हड्डी ही चूर हो गई।"

"यह बुखार नहीं है···" संपत कराहते हुए बोला—"यह जमाने की आग है, जो मेरे बदन का रेशा-रेशा जला रही है। यह घर वालों के पाप का फल है, जो मुझे इस बुढ़ापे में भोगना पड़ रहा है···इस मुरली को देखो, जवान हो गई मगर अब भी गली-गली घूम कर चारा सूंघती फिरती है। आंखे होती तो जाने क्या करती !"

"मुरली को जाने दो काका ! उसका कोई दोष नहीं।"

"इसी का सारा कसूर है"—संपत शिथिल एवं क्रोध पूर्ण स्वर में बोला—"नागिन है यह शम्भू, बिना आंख की नागिन देखती नहीं मगर ठीक निशाने पर डंसती न है···बोलती भी नहीं कुछ। पैदा होते ही इसने सबको डंसना शुरू कर दिया।"

"तुम तो बेकार बिटिया को झिड़कने लगते हो" मुरली की माँ उसे समझाती हुई बोली—"इतनी बड़ी हो गई मगर इसने कोई बात नहीं कही। तुम बाप क्या हुए, सर आसमान पर चढ़ गया। कटार से बेटी का गला उतार दो किसी दिन, तो तुम्हारा कलेजा ठंडा पड़ जाय। पैदा करते समय पीड़ा हुई होती तब ऐसा न कहते···"

"तुम चुप रहो काकी !" शंभू बोला—"काका की तबियत ठीक नहीं, दूसरे इनके दिल को दुख भी बहुत पहुँचा। तुमको ऐसा नहीं कहना चाहिए। मुरली की ममता क्या इनको नहीं !"

"माँ-बेटी दोनों मुझे जला रही हैं। इस समय कोई धीरज देने वाला भी नहीं कोई घाव पर मरहम लगाने वाला नहीं, कोई जलती आग पर पानी डालने वाला नहीं—सभी जबान की छुरी से कलेजा काटने वाले हैं, सभी घाव पर नमक छिड़कने वाले हैं, सभी जलती आग में घी की आहुति देने वाले हैं···सारी दुनिया इस समय इस बूढ़े संपत का घर बरबाद कर रही है···"

"धीरज रखो संपत काका ! दुख के दिन जल्दी तो नहीं बीतते

मगर जब बीत जाते हैं तो दर्द और आँसू के सपने भी याद नहीं आते। यह तो दुनिया का काम है। भगवान जिसे बनाता है, उसका कोई क्या बिगाड़ सकता है—मगर भगवान जिसे बिगाड़ दे, उसे बिगाड़ने वाले लाखों पैदा हो जाते हैं....” शम्भू ने सान्त्वना दी।

सुनकर संगत खीझ उठा। कष्ट स्वर में बोला—“कल का छोरा, तू भी अब बड़ी-बड़ी बातें बनाने लगा है। तुम सब लोग मिल गये हो और मेरी जिन्दगी की जड़ खोद रहे हो मगर यह याद रक्खो, मैं मर जाऊँगा तो एक-एक के सर पर भूत बनकर नाचूँगा...”

“भूत बनो चाहे पिशाच, अभी से डराओ मत”—सुरजी की माँ तमक कर बोली—“जब तक जीते हो ठीक से रहो। मरने पर अगनू ओझा को घर में ला बसाऊँगी तब देखूँगी कि तुम कितने बड़े भूत बनते हो।”

“तुम भी काकी बड़ी वैसी हो”—शंभू ने कहा—“लगती हो बात बात में कौआ का कान काटने...”

“एक दिन तेरा भी कान काट लूँगी मूँछो कहीं के” बुढ़िया शंभू पर बिगड़ पड़ी—“गाँव भर के लोगों का अखाड़ा हो गया है यहाँ। जब जबान खुजलाई तो यहाँ चले आये। रहने दे मुझे तेरी सीख नहीं चाहिये...”

“देखो काकी! ज्यादा बमको मत! शंभू को दोस्त बनाने के लिये सारा गाँव तैयार है, मगर अपने आप शम्भू तुम्हारे घर आ गया तो कुत्ता बन गया। तुम्हीं ने काका का दिमाग खराब किया है। अगर तुम इन्हें जली कटी न सुनाकर मीठी बातों से उनका दिल बहलाओ तो इनका सब दुख दूर हो जाय।”

“तुम ठीक कहते हो बेटा! इसी के मारे तो सारी परेशानी है। दुनिया भर के लोग नाराज हो या खुश, मगर अपने घर वालों को तो और धीरज बँधाना चाहिये...तुम नाराज मत हो बेटा! तुम भी साथ

छोड़ दोगे तो हमारा कौन सहारा रह जायगा? हमारा दिल तो यों ही बस में नहीं है ऊपर से तुम और दुख दे रहे हो। सुख के दिन आने पर जितना सताना चाहो सता लेना, दुख के दिनों में अभी तो साथ दिये चलो बेटा!...." संपत ने गिड़गिड़ाती हुई बीमार आवाज में कहा।

"अरे काका! मैं तो वैसे ही बिगड़ पड़ा था"—शम्भू हँस कर बोला—"काकी की बातें सुनकर मुझे बुरा लग जाता है और तुम भी तो मुरली को ही—बेकार का दोष देने लगते हो। मुरली अंधी पैदा हुई इसमें उसका क्या कसूर! यह तो भगवान की लीला है। हम गरीबों के साथ भाग्य भी खेल खेला करते है। कभी सवेरे-सवेरे ही भरपेट खाना मिल जाता है और कभी-कभी दिन-दिन भर तक प्यास के मारे होंठ सूखे ही रहता है..."

"लो चाचा-भतीजे तो मिल गये। अब बेचारी काकी की आफत आई" मुरली की माँ बोली—"मैं भी तुमसे माफी माँगती हूँ बेटा! बड़ी गलती हुई। जबान ही ऐसी है...जो समय बे समय सबका दिल दुखा देती है।"

"अच्छा तुमको भी माफ कर दिया काकी! अब फिर कभी ऐसा मत कहना। कहोगी तो ठीक नहीं होगा। अभी से कह देता हूँ...घबड़ाने की कोई बात नहीं मैं हर तरह से तुम लोगों की मदद करूँगा। यह जो बग्गू है न उसी की सारी शैतानी मालूम होती है।"

"बग्गू कोहार की?" संपत ने पूछा।

"हाँ काका। बड़ा दगाबाज है कमीना!"

"कैसी बदमाशी की उसने?" मुरली की माँ ने पूछा।

"मेरा ख्याल है कि उसी ने सजीवन लाल से सारी बातें बताई थी...

"मूँछें नहीं जल गयी उस कुत्ते की?...गाँव का दूध पीकर साँप बन गया है बेइमान! ऐसा नहीं जानती थी उसे। आता है तो काकी काकी कहकर पाँव लगता है..." मुरली की माँ ने दाँत पीसते हुए कहा।

"जाने दो काकी ! मैं उसको ठीक कर दूँगा । जिस दिन मुझे गुस्सा आयेगा उसकी हड्डी-पसली तोड़ दूँगा ।...अरे, साँझ हो चली यह तो, अच्छा तो मैं चलूँ, काका !"

"बुरा मत मानना बेटा !" मुरली की माँ ने विनती की ।

शंभू जाने के लिये उठ खड़ा हुआ तो उसकी नजर पत्थर की मूर्ति-सी खड़ी उदास मुरली पर पड़ी । उसके पास जाकर वह बोला—
"चोट लग गया क्या तुझे ? देखो काका ! अन्धों को भी बात की चोट लगती है...सुन रे मुरली ! ज्यादा चोट लग गयी हो तुझे तो जा कर घाव पर थोड़ी सी राख लगाले....खड़ी क्या है जाकर काकी के पास बैठ न..."

कहकर शंभू चला गया । उसका टेढ़ा-मेढ़ा भयानक शरीर पगडन्डी की धूल के साथ दूर जा कर विलीन हो गया ।

जम्मू ने जोर से पुकारा—"क्या कर रही हो अन्दर ! एक चिलम तम्बाकू भरने में इतनी देर कर देती हो कि उतनी देर में भगवान दो चार जीवों की मूरत गढ़ दें..."

भीतर से अनूप हाथ में चिलम और चिलम में दहकते अँगारे लिये हुए तेजी के साथ आई।

बोली—"जो न जरा-सी देर हुई तो लगे हो त्राही तबाही मचाने... आग सुलगती तब तो लेकर आती। आजकल आग भी ऐसी हो गयी है मुँहजली कि फूँक मारते रहो मगर सुनती ही नहीं। और तुम तो ऐसे हो कि लगते हो मुझको ही कोसने..."

"भगवान कसम, जब तुम गुस्सा होती हो तो तुम्हारा चेहरा इतना लाल हो जाता है, जैसे सवेरे-सवेरे के आसमान पर लाली फैल गयी हो..." चिलम को मुँह से लगाते हुए बोला जम्मू।

"गुस्सा तो तुम्हीं होते हो और लगते हो मेरे चेहरे की बड़ाई

काटने...तुम भी जब गुस्सा होते हो तो तुम्हारा चेहरा लँगड़े ग्राम जैसा हो जाता है—ऊपर से देखने में हरा और नीचे काटने पर लाल-लाल..."

"अच्छा, तुम जीत गयी और मैं तो बचपन से ही हारता आया हूँ—अब बस करो ये बातें...कैसी आग चढ़ाई थी चिलम पर, देखो बुझ गयी। भगवान कसम, तम्बाकू पीना भी आज कल जी का जंजाल हो गया है..."

"जंजाल हो गया है तो हुक्का-चिलम तोड़ कर फेंक क्यों नहीं देते...धुँआ पीने से उमर थोड़े ही बढ़ती है, जिन्दगी में आग लग जाती है तो ऐसी चीज को मुँह लगाने से क्या फायदा?" हाथ की उँगलियों को विचित्र ढंग से मटकाती हुई अनूप बोली।

"हुक्का-चिलम जी चाहे तो फोड़ दो मगर तब बग्गू के हाथ से चाक एक चक्कर भी नहीं घूम सकेगो..." बग्गू ने चिलम की आग पर फूँक मारते हुए कहा—"भगवान कसम, आग भी बड़ी शैतान होती है। अभी किसी के घर में लगा दो तो बिना फूँक मारे ही लपटें उगलने लगे और यहाँ चिलम पर रक्खी है तो फूँक से आँख भी नहीं खोलती...तुम जरा चारपाई बिछा दो। अपने संपत काका आ रहे हैं..."

दूर से लाठी के सहारे धीरे-धीरे आता हुआ संपत दिखाई पड़ा।

उसे देख कर अनूपा ने नाक भौं सिकोड़ ली और चारपाई को इतनी जोर से जमीन पर पटक दिया कि बेचारी हिल-काँप कर अपने आप बिछ गयी।

बग्गू हाथ जोड़ कर इस तरह खड़ा हुआ जैसे कोई भक्त आँखों में भक्ति का सागर लिये भगवान को आते देख रहा हो।

संपत पास आ गया। महीनों की बीमारी के बाद आज वह बाहर निकला है, तो ऐसा लगता है जैसे भीमकाय बरगद सूख कर कृषकाय झाड़ बन गया हो।

"अच्छे हो गये काका !...भगवान कसम बीमारी के बाद तुम्हारा शरीर ऐसा हो गया है, जैसे बहुत बड़ी आँधी किसी हरे-भरे पेड़ की डाल पात उड़ा ले गयी हो और अब केवल ठूँठ बच रहा हो...बुढ़ापे में बीमारी छोटी हो या बड़ी, कमर तोड़ देती है। तुम्हारी कमर भी तो भगवान कसम, बाँस की फुनगी की तरह नीचे झुक गयी। अब कैसी तबीयत है काका !" जग्गू ने बनावटी आदर का भाव प्रदर्शित करते हुए कहा।

"तबियत तो अब ठीक है जग्गू! बीमारी कोई बुखार खाँसी की नहीं थी—" संपत ने हाँफते हुए कहा।

"मैं जानता हूँ काका ! तुम को चिन्ता की बीमारी थी...चिन्ता अगिन शरीर बस उर अन्तर सुलगाय...है कि नहीं काका !"

"तुम ठीक कहते हो जग्गू! चिन्ता की आग लग जाती है तो शरीर से धुआँ भी नहीं उठता...क्या हो रहा है !...."

"होने को तो बहुत कुछ होता रहता है काका! तुम आ गये हो तो काम-धाम कि किसको फिकर है? बैठो थोड़ी देर इस चारपाई पर...चिलम भरूँ क्या ?"

"रहने दे चिलम का धुआँ गले के नीचे उतरते ही साँस डूबने लगती है।" संपत ने चारपाई पर बैठते हुए कहा।

"किधर भूल पड़े काका! बीमारी के बाद आज पहले ही पहल निकले हो शायद! किसी खास काम से जग्गू को दर्शन दिया है क्या काका ?"

"हाँ, खास ही काम समझ लो...चारपाई पर आ बैठो जग्गू! नीचे क्यों बैठे हो!"

"यहीं ठीक है काका! तुम्हारे सामने चारपाई पर बैठने की हिम्मत नहीं...कहाँ राजा भोज और कहाँ जग्गू कोहार!" जमीन पर बैठते हुए जग्गू ने कहा।

"अनूप घर में है क्या बग्गू ?"

"अभी तो थी काका ! बुलाऊँ, कुछ काम है क्या ?...अरे सुनती हो..." कहते-कहते बग्गू पुकार उठा।

मगर संपत ने उसे बीच ही में रोक दिया—"रहने दो उसे, पुकारो मत। काम तुम्हीं से है। अनूप का सुनना अच्छा नहीं होगा..."

"कोई भेद की बात है क्या काका ? कहो-कहो और नजदीक खिसक आऊँ क्या ?" कहकर बग्गू संपत के नजदीक खिसक गया।

संपत की मुखाकृति अत्यन्त गंभीर हो गयी। चारो तरफ देखकर बोला—"क्या-क्या बातें सुनने में आ रही हैं बग्गू, कुछ समझ में नहीं आता कि किसका दोष है ?"

"क्या बातें तुमने सुनी है काका ?" बग्गू सजग हो गया।

"लोग कहते हैं कि तुमने सजीवन लाल से मुरली के अन्धी होने की बात कही थी..."

सुनकर बग्गू चौंक पड़ा, फिर सकपका कर बोला—"लोग कहते हैं या सिर्फ शम्भू की बदमाशी है यह ?...अभी उस दिन मुझसे लड़कर गया है बेईमान और अब लोगों में झूठी सच्ची बातें फैला रहा है..."

"झूठी बात नहीं है बग्गू ! मैं शंभू को अच्छी तरह जानता हूँ। शंभू की सूरत भले ही भद्दी हो, मगर उसका दिल साफ है। मुझे विश्वास है, उसने जो कुछ कहा है सब सही है। बहुत दिन पहले मुझे यह बात मालूम हो चुकी थी मगर बीमारी के कारण तुमसे मिल नहीं सका। तुमको बुलाया भी तो तुम अपना रुपया लेने तक नहीं आये—"

"रुपये आगे-पीछे आते ही रहते हैं काका ! बग्गू रुपयों का भूखा नहीं। तुम्हारे यहाँ रहे तो, हमारे यहाँ रहे तो—दोनों बराबर ! मुरली की शादी नहीं हो सकी तो मैं कौन सा मुँह लेकर तुमसे रुपये माँगता।"

"मगर तुमने अच्छा नहीं किया बग्गू! गाँव का आदमी होकर मुझ गरीब का गला काट लिया तुमने···" संगत ने करुण स्वर में कहा।

"क्यों बेकार की तोहमत लगाते हो काका! वह शंभू का बच्चा तो अब दिखाई नहीं पड़ता, नहीं तो मजा चखा देता। तुम्हारी कसम काका जो भी मेरे रास्ते में पड़ेगा, उसे चाक पर रखकर चक्का खिला दूँगा। तुम भी उसी के बहकावे में आ गये हो। यह अच्छी बात नहीं..." इस बार बग्गू की आवाज तेज थी और वह बड़े बेढंगे तरीके से संगत की ओर देख रहा था।

उसकी बातें सुनकर संगत को भी क्रोध आ गया। कमजोर शरीर उत्तेजना से तिलमिला उठा।

वह उठ कर खड़ा हो गया।

क्रोधित स्वर में बोला—"कल के छोकरे, बहुत बढ़-चढ़ कर बातें कर रहे हो! बना-बनाया खेल तुमने बिगाड़ दिया, अब तुमको शरम भी नहीं आती! बेचारे शम्भू को बेकार बुरा कहते हो। जानता होता कि तुम इतने दगाबाज हो तो उसी दिन तुम्हारी नाक कटवा लेता...संगत को बीमार देख, तैश में मत आओ। शम्भू मेरा ही मुँह देख रहा है। अभी कह दूँ तुम्हारी एक-एक हड्डी तोड़ दे। अब मैं जाता हूँ। समझ गया कि गाँव में दूध देनेवाली गायें भी हैं और जहर उगलने वाले नाग भी..."

"नाग तो तुम्हारे ही जैसे होंगे काका!" बग्गू ने भी उठते हुए कहा—"जो भले घर के लोगों को धोखा देता है, जो अपनी अंधी बेटी को ब्याहने के लिए उसका सारा ऐब छिपा जाता है...तुम्हारी दगाबाजी तो सारा जमाना जान गया है, मेरी दगाबाजी का किसी के पास कोई सबूत नहीं। बांच समाज में तुम्हारा मुँह काला हुआ काका! बग्गू के मुँह पर तो अभी कलंक के छींटे भी नहीं पड़े। जाओ काका! बग्गू बुरा है तो तुमसे क्या मतलब..."

संपत को बेहद क्रोध आ गया। उसने अपनी लाठी उठाई और बिना कुछ बोले चल पड़ा—

उसके जाते ही बम्मू ने शान से अपनी छोटी-छोटी मूँछों पर हाथ फेरा तबतक अनूप भी बाहर निकल आई। वह घर के अन्दर छिपी-छिपी सब कुछ सुन रही थी।

बाहर आकर बम्मू के पास बैठती हुई बोली—"तुम्हारे संपत काका गये क्या? बड़ी उछल कूद मचा रहे थे। बीमारी से उठे हैं कमजोर बहुत हो गये हैं, जो पागल कुत्ते की तरह भूंकते हैं...क्यों जी अगर तुमने सजीवनलाल से उनकी धोखेबाजी की बात कह दी तो क्या बुरा किया? ऐसा धोखेबाज तो मैंने देखा ही नहीं। क्या शान से लाठी लेकर खड़े थे। जैसे बड़े-बड़े कांटे लिए बबूल के पेड़, जिसकी जड़ कट गई हो...."

"तुमने तो मेरे मन की बात कह दी" बम्मू ने कहा—"उस दिन तो तुम मुझको बिगड़ रही थी और आज तरफदारी कर रही हो। वाह वाह! तुम्हारी जैसी औरत भी मेरे देखने में नहीं आयी।"

"उस दिन तो मैंने यों ही कह दिया था—" अनूप ने कहा—"तुमने गलती ही कौन-सी की थी? दगाबाजों को सजा देना तो हर आदमी का फर्ज है...अरे, आज कुछ काम भी होगा या नहीं? बैठे-बैठे आराम तो मिलेगा मगर पेट नहीं भरेगा..."

अनूप की डाँट सुनकर बम्मू उठा और चाक के पास जा बैठा।

उधर अपमान की घूंट पीकर संपत बढ़ा जा रहा था। लाठी के सहारे जीर्ण शरीर सँभाले नहीं संभलता था।

तभी [illegible] से आते हुए शंभू की दृष्टि संपत पर पड़ी। लपक कर वह संपत के पास आया।

बोला—"बम्मू के घर गये थे क्या काका? क्या-क्या बातें हुईं?"

संपत रुक कर हाँफते हुए बोला—"पूछो मत शंभू। पूरा नाग है यह जग्गू। शैतान ने डँस लिया। ऐसा डँसा कि अब जिन्दगी भर तक तड़पते रहेंगे, मगर जान नहीं निकलेगी।"

"मैं तो जानता ही था काका! अब तुम घर जाओ। बीमार शरीर लेकर ज्यादा घूमो-फिरो मत। जग्गू की चिन्ता मत करो। जो दूसरों को सताता है, उसको ईश्वर सताता है...." शंभू ने कहा।

संपत चलने को उद्यत होता हुआ बोला—"ईश्वर के ही भरोसे तो दिन कट रहे हैं। मौत भी नहीं आती कि जग जंजाल से छुटकारा मिले... तुम किधर जा रहे हो?"

"तालाब तक जाने का इरादा है—"

संपत कराहता हुआ अपने घर की ओर चला गया और शंभू आगे बढ़ा।

तालाब, सुनसान वातावरण और खामोश हवा से घिरा हुआ सोया पड़ा था। साफ पानी पर कहीं-कहीं काई उग आई थी। पानी के बीचो-बीच पत्थर की छोटी लाट चुपचाप खड़ी थी।

शम्भू तालाब के किनारे पहुँच गया। उसने देखा कि दुनिया से उपेक्षित मुरली पानी में पैर लटकाये बैठी हुई है।

"मुरली, तुम यहाँ? मैं समझता था कि तू तालाब पर ही होगी। दुखियों के लिये इस जगह को छोड़ कर और कोई अच्छी जगह नहीं... जी चाहे तो सोच में डूबे रहो, जी चाहे पानी में कूद कर सब दुखों से छुटकारा पा लो..." शम्भू ने मुरली के पास बैठते हुए कहा।

मुरली सजग हो गयी। बोली—"शम्भू भैया! यहाँ तो बड़ा जी लगता है मेरा! बैठ जाती हूँ तो उठने का मन नहीं करता।...कुछ देख तो पाती नहीं, मगर कानों से चिड़ियों की चहचहाहट सुनती हूँ। नाक से ठंडी हवा के कोमल झकोरों की मीठी-मीठी सुगन्ध सूँघती हूँ। हाथों से

तालाब का ठंडा पानी छूती हूँ—बड़ा आनन्द आता है शम्भू भैया !... तुम मेरे घर गये थे क्या ?"

"गया तो था मगर तुम मिली नहीं" शम्भू ने कहा—"काकी मिली तो लगी बिगड़ने । मैं समझ गया, तुम तालाब पर ही होगी, सो इधर ही चला आया । रास्ते में काका भी मिले थे । जग्गू से मिलकर आ रहे थे । बड़े परेशान से थे...इस जग्गू ने तुम्हारे घर की सारी सुख-शान्ति नष्ट कर दी..."

"कुछ कह रहे थे बापू ?"

"कह तो नहीं रहे थे कुछ, मगर टूटे हुए पेड़ को देखकर बीते हुए तूफान की भयानकता दिखाई पड़ जाती है...महीनों हो गये मगर तुम लोगों को कभी हँसते नहीं देखा मैंने ।"

"हँसी तो चेहरे पर ही आती है शंभू भैया, मगर निकलती दिल से है—और दिल ही जब दुखी है तब हँसी कहाँ से फूट सकती है ?" मुरली ने एक करुण आह लेकर कहा ।

"तुझे क्या हो गया है मुरली ?" शंभू ने मुरली का हाथ पकड़ते हुए पूछा ।

"कुछ तो नहीं शंभू भैया । अब क्या होगा ? जो कुछ होना था वह हो गया । आशाओं का महल जो खड़ा था, वह तूफान के एक ही झोंके से जमीन पर गिर पड़ा । अब तो खंडहर देखकर ही सन्तोष करना पड़ेगा शंभू भैया !" मुरली के स्वर में बड़ी पीड़ा थी ।

"तू इतना अफसोस क्यों करती है ? एक बारात लौट गई तो चार आ जायेंगी ..शंभू जब तक जिन्दा है..."

"ऐसा न कहो शंभू भैया ! नारियों की बारात सिर्फ एक बार आती है और उनके प्राण जीवन भर के लिये उस बंधन में बंधकर रह जाते हैं...दो चार बारात देखने की अब लालसा नहीं । एक आकर जो लौट

गई है, उसी की याद बनी रहे, इसी में नारी जीवन की सार्थकता है...उस दिन कितने अच्छे-अच्छे बाजे बज रहे थे शंभू भैया! उनकी सुरीली आवाज अब तक कानों में गूँज रही है। इस अन्धी की दुनिया दो क्षण के लिये गुलजार हुई, पतझड़ की जिन्दगी में थोड़ी-सी बहार आयी—इतना ही बहुत है..."

"तू कैसी होती जा रही है मुरली?...जो भाग्य में लिखा था सो तो हो गया। अब क्यों पछता रही है?" मुरली की बातें सुन कर शम्भू का हृदय भी अत्यन्त व्यथित हो गया था।

"इन्सान की जिन्दगी में पछताना ही पछताना तो है शंभू भैया! पछताने से कभी छुट्टी नहीं मिलती..."

"तू तो अंधी है मुरली। देख तो सकती नहीं, फिर इतनी मोह-माया तुझे क्यों सताती है?" शंभू ने पूछा।

"मोह-माया की मत पूछो शंभू भैया! आँखें नहीं हैं मगर दिल तो है...नयनों में ज्योति नहीं है मगर पलकों में आँसू तो है!"

कह कर मुरली रोने लगी।

शंभू ने उसके आँसू पोंछ दिये।

बोला—"भगवान भी कितना बेरहम है, जो लोगों की आँखें छीन लेता है और तड़पने के लिये इतना बड़ा दिल दे देता है..."

"मेरे दिल को कहीं आराम नहीं है शंभू भैया! बहुत समझाती हूँ अपने हृदय को मगर नहीं मानता...एक काम कर दोगे मेरा?" मुरली के आँसू रुक गये थे।

"क्या करने को कहती है? तेरे लिये कुछ कर सका तो मैं पीछे न रहूँगा...जग्गू ने तुझे फिर छेड़ा है क्या? तू सच जान, इसबार उसकी गरदन तोड़ दूँगा..."

"जग्गू की मुझे चिन्ता नहीं। तकदीर ने जो दुख मुझे दिया है उसकी

रहा था। शंभू को शहनाई के स्वर में मुरली की हिचकी सुनाई पड़ रही थी।

कुछ सोच-विचार कर पुनः शंभू नीम की छाया में मौन हो बैठ गया। दुपहर की धूप जल रही थी। शंभू का मस्तक द्वन्द में उलझा फट पड़ना चाहता था। उसे तेज प्यास लगी थी, किन्तु जाने कौन सी शक्ति कुँए तक जाने नहीं दे रही थी। शायद अपनी प्यास से अधिक मुरली की अंधी आँखों की प्यास उसे आवश्यक दीख रही थी।

शंभू ने चारों ओर देखा—

अरे, वे युवतियाँ कहाँ चली गयीं। कितनी असभ्य थीं वे। उसकी बदसूरती का मजाक उड़ा रही थीं। उनकी आँखों में गहराई तक पहुँचने की ज्योति नहीं, वे छिछले में डुबकी लगाने वाली हैं। रूप की ज्योति पर टिकना जानती हैं, मन की मोती पर मिटना नहीं।

अगर मुरली के पास आँखें होतीं तो उसे चाहती?

उसके बाद उसने अधिक विचारों में बहना ठीक नहीं समझा। खोटे बनाने वाले भगवान पर क्रोध कर, रह गया। आखिर उसने भगवान का क्या बिगाड़ा था, जो उसने उसे बिगाड़ दिया। बिना उसे स्मरण किये मुँह में जल भी तो नहीं डालता। आखिर क्यों?

तभी—

अपनी मेहनत से जीने वाले दो किसान, जेठ के आतप से तपे, अभाव से जर्जरित खून को पसीना बना कर बहाने वाले—आकर नीम की ठंडी छाँव में बैठकर गाँव की ओर देखते हुए बातें करने लगे। धूप की चमक से गाँव के घर-मकान जलते-से मालूम पड़ते थे। उन्होंने अपनी दृष्टि फेर ली। एक दूसरे की आँखों में देखने लगे।

दोनों ने अपनी नीमस्तीन उतारी, सर पर बंधे अंगोछे से शरीर का पसीना सुखाया और उसी से हवा करने लगे।

एक ने जेब से बीड़ी निकाली, दूसरे की ओर बढ़ाया और फिर बातें करने लगे—

यों—

"इस साल क्या बोने का इरादा है बोलू !....तुम्हारे खेत की मिट्टी तो पारस है पारस, चाहे जो बो दो सोने की तरह पैदा होगा..."

"दूसरों की चीज सबको भाती है दीनू ! तुम्हारा खेत क्या अमृत नहीं पैदा करता ?...बरखा-बरखा होवे तो मजा भी आये..." बोलू ने कहा।

"होगा न भाई, समय तो आने दो...धानपुर में एक जोड़ी बैल बिकाऊ है, मस्त बिलकुल पट्ठा...चाहता था खरीदना मगर रकम...तुम चाहो तो खरीद लो ..." दीनू बोला।

दोनों में थोड़ी देर तक इसी तरह की बात-चीत होती रही। खेती-बारी की बात खतम हुई तो शादी-ब्याह की बात उठी—

"क्या बताऊँ, लड़की जवान हो गयी...सोचता हूँ, उसके हाथ पीले कर दूँ...मगर भैया ! दहेज का नाम सुन कर तो हिम्मत नहीं पड़ती..."

"हम तो कहें दीनू भैया ! भगवान लोगों को गरीब बनावें तो घर में बेटी न दें....फजीहत हो जाती है..." बोलू ने कहा।

"देखो न छोटे सरकार का ब्याह कितने धूमधाम से होने जा रहा है... अमीर हैं न, कमी किस बात की है ?...दूसरा ब्याह है यह। शहर में हो रहा है। साँझ को बारात उठेगी।"

"बड़ों की बात क्या करते हो दीनू भैया !....इनका भरोसा ही क्या !" खतम हुई बीड़ी को बगल में फेंकते हुए बोलू ने कहा—"बस सलामत रहे इनकी दौलत। शादियाँ एक तो क्या, हजार करें रोज। दूसरी शादी है न क्यों ?" बोलू ने प्रश्न भरी दृष्टि से दीनू की ओर देखा।

"क्यों, क्या ?...पास के गाँव में ही तो हुई थी—क्या कहते हैं— हाँ, याद आया—संपत के घर—" बोला दीनू—"बड़ा मजा

मानुस है बेचारा !....भाग ही बिगड़ा था उसका तभी तो जनम लेते ही लछमी जैसी बेटी अन्धी हो गयी...सच मानो भोलू राम, मुरली जैसा रूप आस-पास के गाँव में खोजने पर भी नहीं मिलेगा...तारों के बीच चाँद जैसी है वह..."

"मुरली कौन ?"

"अरे संपत की बेटी !...बड़ी भोली, बड़ी भली। बेचारी की आँखें क्या गयीं, दुनिया अँधेरी हो गयी" सहानुभुति के स्वर में दीनू ने कहा।

शंभू दूसरी ओर देखने में लीन था। रामदयाल से मिलने की तरकीब सोच रहा था। मिलने पर पहले उसे क्या कहेगा—आदि बातें उसके दिमाग में उमड़-घुमड़ रही थीं। अगर कहीं बात-बात में क्रोध आ गया उसे तो ? नहीं, क्रोध को खून का घूँट बनाकर पी जाना पड़ेगा उसे। गुस्से में सारा बना बनाया खेल बिगड़ जाता है। दोस्ती करने के लिये आदमी को नम्रशील एवं मधुरभाषी होना अत्यन्त आवश्यक है। जो जितना झुकता है, वह उतना ही ऊपर उठता है। वंशी का स्वर अगर जहरीले साँप को बेसुध कर सकता है तो क्या इन्सान मीठी बातें बोल कर अपने ही जैसे इन्सान को अच्छी राह पर नहीं ला सकता ?

वह यह सब सोचने लीन ही था कि उसने दोनों किसानों को राम-दयाल के बारे में बातें करते सुना। उसके कान उनकी बातों को सुनने में लग गये। आँखें भी उन्हीं की ओर फिर गयीं।

"बड़ी अभागी है बेचारी !" भोलू ने कहा—"बेटा अन्धा हो तो क्या, कुल का दीपक तो होता ही है दीनू सिंह। मगर बेटी अन्धी हो तो कुल में कलंक लग जाता है, लोग उँगलियाँ उठाने लगते हैं..."

"तुम ठीक कहते हो भोलू भाई। मगर सजीवन लाल ने संपत के साथ बड़ा अन्याय किया। सात फेरे की गाँठें पड़ गयीं, फिर भी बारात बिना बहू के वापस ले आया..."

"बड़ों की बात है न! उनको सब कुछ करने का अधिकार दे दिया है भगवान ने। वे अपनी रकम से अपना पाप, पुन्न में बदल लेते हैं..."

"यह पाप कभी मिटेगा नहीं भोखू राम! कभी न कभी अपना असर दिखायेगा ही। भगवान देर करता है, अँधेर नहीं...अगर किसी के भाग में पत्थर ही लिखा है तो चाँदी कहाँ से पायेगा?...देखो न, गनपत अहिर के भाग में लिखा था तभी न लँगड़ी बहू मिली उसे।" दानू ने गनपत का नाम लेकर गर्व से सर उठाकर कहा—"मगर गनपत ने छोड़ा नहीं उसे। बैठकर सेवा करता रहा उस लछमी का...आखिर भगवान ने खुश होकर वरदान दिया, साल भर बाद ही कृष्ण-कन्हैया जैसा बेटा मिला...अगर मुरली को ठाकुर अपनी बहू बना लेते तो क्या बिगड़ जाता! हजारों तो बेकार बैठकर भकोसते हैं—वह भी खाती बेचारी... लोग सुनते तो ठाकुर को नेक दिल मान कर इज्जत करते...."

"मुरली बैठकर खाने वाली नहीं भैया! अपने भाँगर से खाने वाली है वह। मन की आँखों से सब देखती है वह..." शंभू ने आखिर कह ही डाला।

दानू और भोखू की दृष्टि बराबर बैठे व्यक्ति पर पड़ी, जो काला-कलूटा टेढ़े-मेढ़े अंग वाला था। वे उसे देखकर चौंक पड़े।

"तुम कौन हो भाई!...इस गाँव के तो नहीं लगते?" भोखू ने कहा।

"मेरा नाम शंभू है, मुरली के गाँव का ही हूँ। संपत को गाँव के नाते काका कहता हूँ।" शंभू ने कहा।

मुरली के लिये दोनों किसानों के हृदय में स्थान देखकर उसने उनसे सारा किस्सा शुरू से लेकर अन्त तक बता दिया। अगर दोनों के पास मुरली के लिये उपेक्षा के भाव होते तो शंभू कभी बताने वाला नहीं, वह कोई कच्चा खिलाड़ी नहीं। वह बिना काम पूरा किये किसी से कुछ बताने

वाला नहीं। जानता है न यह दुनिया बड़ी दगाबाज है। चार पैर वालों से भी ज्यादा खतरनाक जानवर दो पैर वाले होते हैं। जब वह पश्चिम जायेगा तो पूरब की बात करेगा और जब पूरब जायेगा तो पश्चिम की बात करेगा।

जब दीनू और बोखू ने शंभू को संगत के गांव का, मुरली का मुँह बोला भाई जाना तो उसे पास बुलाया। वे दिलचस्पी लेकर बातों में भिड़ गये। शंभू ने सारी बातें बतायीं। मगर अपने आने का रहस्य नहीं खोला। उसने सिर्फ रामदयाल से मिलने की इच्छा प्रकट की।

"क्या काम है उससे?...समझाओगे क्या? कुछ नहीं होगा भैया!...भैंस के आगे बीन बजाओगे तो कोई लाभ नहीं होगा।" बोखू ने कहा।

"..." शंभू सर लटकाये किसी गंभीर चिन्ता में लीन रहा।

"हो सके तो सजीवनलाल से मिलो।" दीनू बोला—"फिर अपनी बात को स्वयं काट दिया उसने—"मगर वह क्यों पिघलने लगे? उनकी आँखों में तो चाँदी की चमक भर गयी है...सुनने में आता है, बीस हजार तिलक मिला है। उससे कुछ कहना, पत्थर पर सर पटकने के बराबर है।"

"बात तो ठीक कहते हो भैया! मगर..." कहते-कहते शंभू के कानों में मुरली का रुआँसा स्वर गूँज उठा। अन्धी आँखों के आकाश से आँसू के दो बड़े-बड़े तारे गिरते दिखायी पड़े उसे—"कुछ नहीं तो दरसन तो कर लेना चाहता हूँ रामदयाल का! वे अमीर लोग हैं, भूल जायें। हम गरीबों को भूलने की आदत नहीं..."

"वह पहचानेगा भी तुम्हें?" ने प्रश्न किया।

"भैया!" अजीब हँसी शंभू के अधरों पर बिखर गयी। ठीक उसी तरह की जैसी हँसी दुख के आवेग में आती है। बोला—"भगवान को

लोग पूछते हैं मगर वह सबको कहाँ याद रख पाता है...अगर याद ही रख पाता तो दुनिया में गरीबों की दुनिया नहीं होती।"

आकाश पर चढ़ा सूरज धीरे-धीरे ढुलक कर पश्चिम के अन्तराल की ओर बढ़ने लगा। बात की बात में दिन बीत गया। नीम की शीतल छाया धरती पर लम्बी हो गयी। दीनू, जोखू और शम्भू आपस में बातें करने में लीन रहे।

गरीब जब आपस में मिलते हैं तो दिल खोलकर ऐसे कि क्षण भर का परिचय जीवन भर के लिये सम्बन्ध बन कर रह जाता है और अमीर जब मिलते हैं तो दिल चुरा कर आँखें बचाकर। उनके मन में कलुष, बड़प्पन की भावना, दौलत का मद और पद का घमंड रहता है। उनकी जबान पर मरहम रहता है, मगर दिल में छुरा।
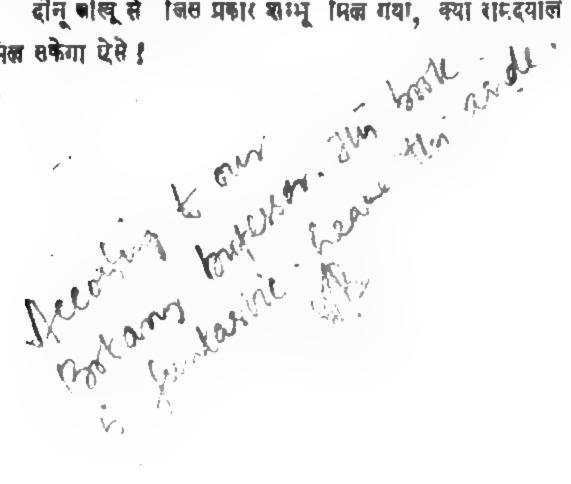
दीनू जोखू से जिस प्रकार शम्भू मिल गया, क्या रामदयाल से भी मिल सकेगा ऐसे!

तीसरा पहर भी बीतने लगा है।

रामदयाल की बारात सज-धज कर रवानगी के लिये तैयार है। शह-नाइयों का मधुर स्वर गाँव के कानों में शोर मचा रहा है। खुशी की हवा चारों ओर बह रही है। हवेली में इतनी भीड़ है, इतनी भीड़ है कि तिल रखने को भी जगह नहीं है, जैसे पूरा तारापुर उमड़ आया है। अमीर की बारात है न और वह भी गाँव के जमींदार की तो भला भीड़ क्यों न हो!

जाति बिरादरी के लोग मसनद पर बैठे पान-पत्तों में खोये हैं। कुछ लोग व्यवस्था में उनके इधर से उधर दौड़ रहे हैं। सभी के कपड़े साफ, इत्र-सेंट से सुवासित। गर्मी भी हलकी पड़ रही है अब। कुएँ के ठंडे जल में गुलाब और केवड़ा का जल मिलाकर लोगों की प्यास बुझायी जा रही है। चारों ओर विचित्र सुषमा नृत्य कर रही है।

गाँव वालों के लिये ठाकुर सजीवनलाल की हवेली स्वर्ग बन गयी है।

गाँव के अनिमंत्रित लोग भी इधर-उधर खड़े हैं। तृषित नेत्रों से देख रहे हैं साज-सजावट। उद्दंड बालकों का समूह उधम मचाने में व्यस्त है। कभी अज्ञानी बालक सभ्यता की सीमा को लाँघ कर उच्छृङ्खलता के मैदान में आ खड़े होते हैं तो बड़े-बूढ़ों की डाँट-डपट उन्हें मिलने लगता है।

ठाकुर सजीवनलाल जोर-जोर से नौकरों का नाम ले-लेकर 'यह लाओ वह लाओ' कह रहे थे। अभी-अभी राम दयाल भी घर से घबराकर बाहर निकला था। थोड़ी देर लोगों के बीच बैठा, किन्तु उकता गया शीघ्रही। उठ कर टहलने लगा। उसके पीछे नौकर पंखा झलने लगा तो उसे मना कर दिया उसने।

नौकर ने एक स्थान पर, खुली हवा में कुर्सी रखदी। राम दयाल बैठ गया उस पर। दिनभर की गरम हवा धीरे-धीरे नरम हो चली थी। हवा का एक-एक तीर उसके मन में सुख सृष्टि कर जाता था। विवाह की स्मृति में खोया था वह। सुहाग रात के उन्मादक दृश्य उसके मनमें उग रहे थे। छुई मुई-सी सुकुमारी नारी उसके विह्वल बाँहों में आ गयी थी। वह खोता जा रहा था—

तभी—

कोई उसके पास आया।

बोला—"बन्दगी सरकार!"

राम दयाल के सपने टूटे। नेत्र खुले।

एक काला-कलूटा आदमी खड़ा था। साँझ के धुँधले प्रकाश में उसका काला-कुरूप बदन बड़ा भयावह, बड़ा अजीब लग रहा था। आगन्तुक का बदन गठीला, टेढ़ा-मेढ़ा और बीभत्स था। सर पर दुपल्ली टोपी हाथ में लोहबन्द उसके व्यक्तित्व को खूँख्वार बना रहे थे।

इतना सब कुछ होने पर भी उस आदमी के मुख से स्वर मीठा, आदर से प्लावित निकल रहा था।

रामदयाल उसकी ओर गम्भीर दृष्टि से देख रहा था, जिसमें पहचानने के भाव मुखर हो उठे थे।

रामदयाल को इस तरह अपनी ओर देखते देख शंभू बोला—"सरकार ने पहचाना नहीं?...बड़ी साध लेकर आया हूँ हजूर!"

"कौन हो तुम?" रामदयाल ने पूछा।

"आदमी हूँ सरकार!"

"वह तो मैं भी देख रहा हूँ...बड़े दिलचस्प मालूम पड़ते हो तुम—बैठ जाओ, खड़े कबतक रहोगे?"

"जबतक जान में जान रहेगी सरकार तबतक ये पाँव नहीं डिग सकते!" उसने थोड़ा हँस कर कहा।

"ठीक है, ठीक है—हाँ तो बताया नहीं तुमने, कौन हो तुम?"

"उनका मुँह बोला भाई हूँ सरकार, जिसकी अंधी आँखें आने किस सूरत में आपको हमेशा याद करती रहती हैं...और जिसे, हजूर की रोशनी वाली आँखें देख कर भी याद रखना भूल गयीं!" व्यक्ति ने मुलायमियत से गंभीर बात कह दी।

"साफ-साफ कहो। हर बात को पहेली बना कर कहने की आदत छोड़ दो। पहेलियाँ समझता नहीं मैं।"

"जो खुद पहेली बना हो, पहेली क्या बूझेगा सरकार!"

"अजीब आदमी हो तुम!" रामदयाल ने थोड़ा हँस कर कहा।

"रामदयाल बाबू! अजीब आदमी ही कहलें मुझे मगर दुनियाँ आपको अजीब से ऊपर मानती है!"

"देखो, मेरे पास इतना समय नहीं है...जो कुछ कहना हो शीघ्र कहो!" रामदयाल को देरी हो रही थी और व्यक्ति उसे अपनी बातों में उलझाये हुआ था। कुछ पल तो उसे उससे बातें करने में आनन्द मिला, किन्तु किसी चीज की सीमा भी तो होती है?

न चाह कर भी रामदयाल विचित्र व्यक्ति से बातें करने में लगा रहा। बीच-बीच में लोग आते। उससे मिल कर कुछ कह जाते, कुछ सुन जाते। रामदयाल की बगल में आकर कोई आदमी खड़ा हो गया। रामदयाल का कोई परिचित संबन्धी ही था। घर से उसे बुलाया जा रहा था। वह उठने-उठने को हो रहा था अब।

"कहाँ से आ रहे हो?" रामदयाल ने पूछा।

"आपकी ससुराल से आ रहा हूँ सरकार!" व्यक्ति ने कहा।

शीघ्रता में रामदयाल की समझ में नहीं आया कि वह किस ससुराल की बात कर रहा है। उसने सोचा, शायद होने वाले ससुराल से आया हो कोई भेद की बात कहने। कहीं पहली शादी की भाँति इधर भी धोखा तो नहीं मिल रहा है? मगर लड़की को उसने तो ठीक बजाकर परख लिया है। न अंधी है न कानी, न लँगड़ी-लूली।

फिर?

हो सकता है, उसे कोई रोग हो, जो उसके खानदान की परम्परागत बीमारी हो? जिसकी जानकारी आगन्तुक को होगी।

जैसे ही रामदयाल के दिमाग में यह बात आयी, वैसे ही उठ पड़ा वह।

बोला—"आओ, उधर एकान्त में बात-चीत करें।"

आड़ में आकर रामदयाल ने धड़कते कलेजे से पूछा—"कहो क्या बात है?"

"ससुराल की बात से पहचान गये आप?...मुझे यकीन न था सरकार कि आपसे भेंट हो सकेगी। आप इतने दरियादिल होंगे यह भी नामालूम ही था।"

"मैं तुम्हें पहिचानता नहीं भाई! कोई भेद की बात हो तो कहो जल्दी से...उसे कोई बीमारी है क्या?" रामदयाल ने चिन्ता के स्वरमें कहा।

"उसे एक बीमारी हो तो कहूँ...बहुत हैं सरकार, अनगिनत। सब से बड़ी बीमारी यही है कि आपके पास नहीं है वह...अंधी आँखों में अँधेरा छाने लगा है सरकार। आपकी पूजा करते-करते पत्थर बनती जा रही है।"

"तुम्हारी बात समझ में नहीं आती।"

"तो साफ-साफ सुनिये—मेरा नाम शंभू है। दिग्घी का रहने वाला हूँ। लोग मुझे खूब जानते हैं।" व्यक्ति बोला—"आपकी होने वाली बीबी की बीमारी लेकर नहीं आया हूँ मैं। वैसे बीमारी तो उसे होगी ही...बीमारी तो आदमी के पास जनम लेते ही आ जाती है। किसी को सोने की बीमारी होती है तो किसी को रोने की...मैं मुरली की बीमारी के बाबत आपसे अर्ज करने आया हूँ सरकार। जिसे आपने बेकार की बला समझ कर टाल दिया है। मुरली आपके नाम की माला जप-जप कर घुलती जा रही है। उसकी अंधी आँखों में आपकी इन्तजारी है...उसकी आँखों का अन्धेरा उसके दिल में उतरता जा रहा है सरकार।"

रामदयाल सोचता-सुनता रहा।

शम्भू आरजू मिन्नत करने में व्यस्त था पत्थर के देवता के आगे—"वह आपके चरणों की दासी है। उसे आपका ही आसरा है। अंधे आदमी भी दिल रखते हैं हजूर। मुरली के भगवान हैं आप। उसे अपनी दया देकर उबार लें, बड़ा नाम होगा माई-बाप।"

"चुप रहो जी।" रामदयाल बिगड़ पड़ा—"फजूल बातें सुनने की फुरसत मुझे नहीं। बेइमान संपत ने बराबर धोखा दिया। बताया तक नहीं कि लड़की अंधी है। अंधी नारी दूसरों की सेवा क्या कर सकती है ! उसका बाप इतना दगाबाज है तो वह दूध की धोई नहीं हो सकती..."

"रामदयाल।" शम्भू की मुद्रा अप्रत्याशित ढंग से बदल गयी—"उसके बाप को चाहे जो कह लो, मगर मुरली के लिये जबान में लगाम लगा कर बोलो...दगाबाज आँखों वाले होते हैं, अंधे लोग मन में छल

के कांटे नहीं रखते...मैंने समझा था, तुममें कुछ शराफत होगी मगर तुम भी अपने बाप के ही बेटे निकले।"

"खबरदार!" रामदयाल भी ताव में आ गया। वह अभी जवान था तो क्यों न उसका खून खौलता?—"जानते नहीं किससे बातें कर रहे हो तुम...भला चाहते हो तो चले जाओ, नहीं लठैतों को बुलाकर हड्डी-पसली एक करवा दूँगा।"

"रामदयाल ठाकुर! मैं तुम्हें अच्छी तरह जानता हूँ...दो कौड़ी के आदमी हो तुम! तुम्हारी धमकी मुझे अपनी जगह से सूत भर भी नहीं हिला सकती—"शंभू ने जोरों से अपनी लाठी जमीन पर पटकी। लाठी की लोहे वाली नोक जमीन में करीब दो इंच धँस गयी। फिर बोला—"ताकत हो तो अपने बाजुओं के भरोसे मैदान में उतरो। अपने नौकरों की लाठी पर कबतक जियोगे? हिम्मत हो तो आओ, शम्भू का हौसला भी देख लो; हम भी देखें तुम्हारे खून में कितना जोश है...तुम्हारे नमक पर जीने वाले कुत्तों की दाँत तो पल भर में तोड़ दूँगा—समझे?"

"बदतमीज!" रामदयाल अपना अपमान सहन नहीं कर सका। क्रोध से भभक उठा। आवेश में उसका हाथ ऊपर उठा और...

शम्भू के चेहरे पर एक झापड़!

शम्भू झापड़ खाकर भी चुप रहा। बिजली की तेजी से उसने उसकी कलाई अपने फौलादी पंजे में पकड़ ली।

लाख कोशिश के बाद भी रामदयाल अपना हाथ नहीं छुड़ा सका। शम्भू की पकड़ कसती गयी।

"रामदयाल!" शम्भू गंभीर स्वर में बोला—"चाहूँ तो अभी गला टीप दूँ तुम्हारा और लोग जान भी न सकें कि दुलहा साहब कहाँ हैं... मगर मुरली के सुहाग हो तुम...आते समय उसने कसम धरा दिया है कि तुम्हें मैं नुकसान न पहुँचाऊँ...नहीं तो अभी तक...शम्भू ने अपनी

बेइज्जती बरदाश्त नहीं की है। इसके बाद भी एक बात है—मैं भी तुम्हें अपना समझता हूँ। अन्धी बेबस नारी की दुनिया उजाड़ कर कभी भी सुख नहीं उठा सकोगे तुम।...अभी जाकर होने वाले ससुराल में कह दूँ कि तुम्हारी इसकी शादी है तो...जानता हूँ मैं कि उन लोगों से यह बात छिपायी है तुम लोगों ने...कह देने पर कैसा अपमान होगा, तुम लोगों का सोचो जरा।...दौलत के घमंड में हवा में उड़ो मत। हवा की बातें पानी की लकीर हुआ करती हैं। जाओ छोड़ता हूँ तुम्हें। तुम्हारे चेहरे पर भय के आसार उग आये हैं। बड़े डरपोक हो तुम, कायर पर हाथ नहीं छोड़ता मैं..." कहकर शम्भू ने उसकी कलाई छोड़ दी—"हम लोग भले ही माफ कर दें तुम्हें मगर भगवान कभी माफ नहीं करेगा...नारी को सताकर सुखी नहीं रह सकोगे तुम।"

"अच्छा, अब तुम जा सकते हो।" रामदयाल ने धीमी मगर तीखी आवाज में हो कहा। रस्सी जल जाने के बाद भी ऐंठन बाकी थी।

"मैं तुम्हारे घर मेहमानी करने नहीं आया रामदयाल! अपनी मर्जी से आया हूँ अपनी मर्जी से जाऊँगा। हाँ, तुम जा सकते हो अब। तुम्हें खोजते होंगे।" कह कर शम्भू संध्या के धुँधलके में मुड़ गया। उसके मन में क्रोध, क्षोभ और ग्लानि—और न जाने कैसे-कैसे भाव उदित हो रहे थे।

रामदयाल क्षण भर के लिये ठिगने-बलिष्ठ-दयालु एवं खतरनाक आदमी को जाते देखता रहा। वह चिन्तित हो उठा था। मन की उदासी चेहरे की चादर पर काले धब्बे की तरह प्रकट हो गयी थी। भारी मन लिये वह दरवाजे पर गया।

रामदयाल को देखते ही सजीवनलाल ने कहा—"कहाँ चले गये थे बेटा! हम लोग कितनी देर से परेशान हो रहे थे..."

रामदयाल ने उदास चेहरा बनाकर एक बार पिता की ओर देखा, फिर आँखें झुका कर घर के भीतर चला गया। उसके मन में घुटन भर गयी थी।

अगर कहीं शम्भू जाकर उसकी पहली शादी की पोल खोल दे तो ! सोच-सोच कर कांप उठता था वह ।

उसने चाहकर भी पिता को शम्भू के आने की बात नहीं बतायी । बेकार में बात का बतंगड़ हो जायगा । क्रोध में आकर उसके पिता न जाने क्या कर बैठें ।

जो होना होगा होगा ही !

शहनाइयों में मिलन का स्वर लहराया । गैसें जल उठीं । बारात उठकर चल पड़ी । रामदयाल पालकी पर बेल-बूटेदार जोड़ा-जामा पहिने बैठा था । सर पर शानदार पगड़ी, गले में गजरा और आँखों में कजरा ।

अजीब शान थी, विचित्र ठाट था ।

छोटा-सा दिग्घी गाँव श्मशान की चुप्पी लिये पड़ा था। लगता था इन खपरैलों और झोंपड़ियों में कोई रहता ही नहीं है। दोपहर का समय। जेठ की हवा। लू इतनी तेज चल रही है कि पत्थर का दिल भी मुरझा गया है, गुलाब जैसे इन्सान की हस्ती ही क्या!

धरती तवे की तरह लाल है। कभी-कभी तेज की आँधी आती है तो धरती की धूल बवन्डर बन कर आसमान की छत पर छा जाती है।

बड़े-बड़े बवन्डरों को देखकर लोग भयभीत हो जाते हैं। गाँव के लोगों को भूत-पिशाच पर अत्यधिक विश्वास होता है। जब बवन्डरों को देखते हैं लोग तो किसी भूत की कल्पना में डूब जाते हैं। और थू-थू करके अपना भय दूर करने लगते हैं। मगर इस समय किसे फुरसत है इन्हें देखने के लिये। गाँव मिट्टी के घरों में छिप कर शीतलता ग्रहण कर रहा है। सब अपनी थकान मिटा रहे हैं।

दिन ढलते ही सभी अपने कामों पर उतर पड़ेंगे।

कुछ लोग गाँव से थोड़ी दूर हट कर खड़े प्रहरी की भाँति बरगद की छाया में भी हैं। ढोरों का झुण्ड भी वहाँ आराम कर रहा है। गाय, भैंसें और भेड़ बकरियाँ जुगाली करने में लीन हैं। उनकी आँखें आधी बन्द आधी खुली हैं। कभी-कभी बकरियों के मिमयाने का स्वर वातावरण की निस्तब्धता तोड़ देता है। चरवाहे बरगद की जड़ों पर सर रख कर विश्राम कर रहे हैं।

ऐसे ही में—

मुरली-अपने घर में दुखी मन लिये, बीमार पिता की चारपाई के पास बैठी है। उसके सुन्दर चेहरे पर सौम्यता की आभा है, चिन्तन के चिह्न हैं, पीड़ा के रंग हैं।

उसकी बूढ़ी माँ भी बगल में ताड़ की चटाई डाले पड़ी है।

अपने माँ-बाप के लिए मुरली अभिशाप ही है। व्यर्थ का बोझ। कभी-कभी उसे लोग बुरी तरह फटकार देते हैं तो उसका मासूम दिल शीशे की तरह टूट जाता है। कभी स्नेह मिल जाता है उसे तो थोड़ी राहत मिल जाती है उसके टूटे दिल को। उसके माँ-बाप उसके और अपने भाग्य से दुखित भले हैं किन्तु सन्तान का मोह उनके कलेजे में तो है ही। जब ममत्व का सागर उनके मन में उमड़ने लगता है तो मुरली को कलेजे से लगा कर खूब रोते हैं।

मुरली अपनी अंधी जिन्दगी से बिलकुल घबरा गयी है। उसे जीना अच्छा नहीं लगता। दिनोंदिन उसकी आँखों का अँधेरा अन्तर में प्रविष्ट करता जा रहा है। तालाब में डूब कर मर जाना चाहती है वह।

न जाने कौन-सी शक्ति उसे ऐसा नहीं करने देती। पता नहीं कौन-सी साध लिये उसका दुखी जीवन जीना चाहता है। दुख के समय आशा की प्रतीक्षा भी खूब बढ़ जाती है, जो निराशा के काले बादलों से अधिक बलशाली और घना होती है।

— पराये वस में —

मुरली के कहे अनुसार शंभू तारापुर चला गया है। सोच-सोच कर पुलकित हो उठती है वह।

जाने कैसा सन्देशा लाये वह। जब मन में यह बात आती है तो कभी उम्मीद की उम्मीद करके वह सावन की हरियाली की भाँति खिल पड़ती है और कभी नाउम्मीद का तीर खाकर सूखे रेगिस्तान की भयानकता चेहरे पर बिछा कर मुरझा जाती है।

मुरली के मन के आँगन में आशा और निराशा की परियाँ नाच रही हैं। परियों का हाथ पकड़े खड़ी है मुरली। आशा उसे दिलाशा देती है—हाँ कहती है। निराशा उसे पिपासा देती है तो उसका दम घुटने लगता है। दूर से दौड़ता हुआ उसके सपनों का राजकुमार, मन का स्वामी, हृदय का देवता रामदयाल आता है। बड़ा नटखट बहुत चंचल बन कर। वह कभी आशा को गुदगुदाकर छेड़ जाता है और कभी निराश को चूम कर खिसक जाता है। मुरली आँखमिचौनी देखती है, तड़प कर रह जाती है।

असफल आदमी अपनी सफलता का ही अधिक स्वप्न देखता है, यह मनोवैज्ञानिक सत्य है। और इसीलिये मुरली भी उम्मीद की दुनिया बसाये रामदयाल को ही देखती है।

मुरली की आँखें संसार की आँखें नहीं देख सकतीं, लोगों के चेहरे पर उनके घृणा प्रेम के भाव नहीं देख सकती, किन्तु उसके कान दुनिया की आवाज, लोगों के तीखे व्यंग और प्रेम-उपेक्षा के स्वर पहचान सकते हैं। दृष्टि से अधिक उसकी श्रवण-शक्ति तेज है।

वह रात दिन घुल-घुलकर रोया करती। अपनी पीड़ा को आँखों का पानी बनाकर बहाया करती। उसके आँसू उसकी असह वेदना, हृदय और दुखी मन के परिचायक—मगर कौन जाने सदियों से पिसी जाने वाली नारी की विवशता!

वि० वि०

जिसे भगवान ने ही दुख दे दिया, उसे इन्सान क्या दूर कर सकता है! मुरली के माँ-बाप ही उसे भार समझने लगे थे तो पराये लोगों का क्या कहना!

नारी सचमुच पराये घर की दौलत है। जैसे खेत में उगा अन्न खेत में नहीं रहता उसी प्रकार नारी भी अपने घर में जवान होकर दूसरे के आँगन में खेलती है। मुरली अगर बेटी न होकर बेटा होती तो सम्पत को बुरा नहीं लगता। बेटा तो कुल का दीपक होता है न। चाहे वह दीप अन्धा हो या बड़ी-बड़ी आँखों वाला। वह प्यारा होता ही है।

जब कभी सम्पत अपनी बीमारी की पीड़ा से कराह उठता, मुरली के सपने टूट जाते। वह सजग होकर ताड़ के पंखे से बीमार बाप पर हवा करने लगती।

"पानी!" करवट बदल कर गर्मी से घबरा कर शिथिल स्वर में सम्पत ने कहा।

"अच्छा बापू!" मुरली ने धीमे स्वर में कहा।

"सुनती हो!" शायद सम्पत ने मुरली का उत्तर सुना नहीं, तभी तो सुनती हो को पुकारने लगा।

मगर 'सुनती हो' तो चटाई पर खर्राटे भर रही थी।

"कहाँ मर गयी...सब दुश्मन ही बनते जा रहे हैं। बेईमान, हराम-जादी..." सम्पत बड़बड़ाने लगा—"साँप को लाख दूध पिलाओ, जहर ही उगलेगा..."

उसकी भुनभुनाहट सुनकर उठी मुरली की माँ। कच्ची नींद टूट जाने से झुँझला उठी थी वह। बोली—"क्या बकबका रहे हो जो तुम! बीमार क्या हो गये, आसमान सर उठा लिये—जरा भी चैन नहीं लेने देते तुम, रातभर तो हैं-हैं-हो-हो करते जगाते रहे हो..."

"करना चैन, मेरी अर्थी तो उठ जाने दो। माँ-बेटी मजे लूटना... ज्यादा जल्दी हो तो बामन वैद्य से जहर माँग कर खिला दो—छुट्टी मिल जायगी..." संपत आवेश में बोला और हाँफने लगा।

"चुप रहो जी तुम्हारे मुँह में कीड़े पड़ गये हैं क्या, जो हमेशा मरने की बात करते हो!...मुरली कहाँ चली गयी!" स्वर नरम हो उठा था मुरली की माँ का।

"मर गयी मुरली, उसकी बात मत उठाया करो मेरे आगे। उसका नाम सुनकर दिल जल जाता है। उसी के कारण तो मेरा यह हाल है... सच जानो, वह हम लोगों के लिये काल है। बिना खाये नहीं छोड़ेगी हमें। भगवान ने हमारे भाग में नागिन भेजा है।" संपत उखड़ कर बोला।

"शरम नहीं आती कहते....एक तो बेचारी अंधी है, लाचार है। उस पर हमें दया दिखानी चाहिये...मगर तुम हो कि हरदम लाठी लेकर उसके पीछे पड़े रहते हो। पैदा करते समय पीड़ा होती तो जानते!... नहीं भाती है तो न देखा करो उसे या गला ही घोंट दो उसका...कलेजा ठंडा हो जायेगा!" मुरली की माँ रोने लगी कहते-कहते।

मुरली की माँ को मुरली के लिये बड़ी चिन्ता थी। वह बहुत चाहती थी उसे, क्योंकि वह माँ थी। उसके धड़कते कलेजे में दिल था, ममत्व का स्रोत था, सन्तान का मोह था। माँ जैसा विशाल हृदय दुनिया में सिर्फ धरती के पास है। माँ नारी का श्रेष्ठतम रूप है। एक नारी ही सन्तान का मोह समझ सकती है—पुरुष क्या समझेगा, बाप बनकर।

तभी—

किसी चीज के गिरने का स्वर हुआ। साथ ही साथ किसी के मीठे गले से हल्की सी चीख भी निकली।

"कौन है मुऐ...टाँग न तोड़ दिया इस बिल्ली का तो मेरा नाम

नहीं...” कहकर मुरली की माँ ने पास पड़े ताड़ के पंखे को झपट कर उठाया और बगल के कमरे में दौड़ी।

जाकर देखा उसने—

मुरली पैर का अँगूठा थामें बैठी है, उसमें से खून बह रहा है। जमीन पर पानी बिखरा पड़ा है, पास ही लोटा औंधे मुँह लुढ़का है।

“इधर क्यों आयी रे मुँहजली !” मुरली की माँ ने ने बिगड़ कर कहा।

“बापू के लिये पानी लेने आयी थी माँ !” करुण स्वर था मुरली का।

“बापू के लिये पानी लेने आयी थी। बड़ी आयी है बापू की सेवा करने वाली, कुलच्छिन !” मुरली की माँ बिगड़ पड़ी। एक पुराना कपड़ा लेकर उसने मुरली के अँगूठे पर पनकपड़ा बाँध दिया।

मुरली अपनी बेबसी और दुर्भाग्य पर रो पड़ी।

मुरली की माँ ने लोटे में पानी भरा, और लाकर संपत के मुँह से लगा दिया।

बोली—“लो पी लो जितना जी चाहे...जिन्दगी भर की प्यास बुझा लो।”

सम्पत ने कोई उत्तर नहीं दिया। सोचा बात से बात बढ़ जायगी।

पानी पिलाकर मुरली के पास गयी वह। उसने मुरली को बिगड़ दिया था न इसी लिये। वह जानती है, रोती होगी सो मनाना तो पड़ेगा ही।

मुरली के माथे पर हाथ फेर कर बोली वह—“बड़ी चोट लग गयी तुझे न। चुप हो जा बेटी। भगवान ने दुख ही तेरे भाग्य में लिख दिया तो क्या करेगी...!”

“दया मत दिखाओ माँ। अंधों को चोट नहीं लगती, वे तो पत्थर के होते हैं न। और पत्थर के पास दिल कहाँ? जिसके पास दिल होता है

उसे ही चोट लगती है...सब के ताने सुनते-सुनते जी भर गया है अब तो। मुरली की वजह से बहुत दुख होता है तुम लोगों को तो गला क्यों न घोंट देती हो...” मुरली हिचकी भरती हुई बोली।

“तेरा गला घोंटने के लिये ही न पाल-पोस कर इतना बड़ा किया। शैतान की बात तो देखो...फिर बोलेगी ऐसा तो मुँह तोड़ दूँगी...” मुरली की माँ ने प्यार की हल्की चपत मार कर कहा।

“मार लो माँ! अगर मारने से ही तुम लोगों को सुख मिलता है तो मार लो मगर बात मत कहो...हाथ से मारोगी तो शरीर ही में चोट लगेगी...बात की चोट तो सीधे कलेजे पर पड़ती है...” मुरली ने कहा।

“अच्छा, हो गया न, अब चुप रह।...” बोली मुरली की माँ और उसे उठाकर बाप के कमरे में ले आयी।

“चुप क्यों रहूँ माँ! भगवान ने आँखें छीन लीं तो क्या हुआ मुँह में जबान तो है बोलने के लिये...” मुरली अत्यधिक दुःखी हो उठी थी। इसलिये प्रश्नों का उत्तर देती जा रही थी।

“आँखें नहीं हैं तो भी तो ठीक निशाने पर डँसती है हरामी! आँखें होती तो न जाने क्या करती...!” मुरली की बात सुनकर संपत ने कह डाला।

“तुम चुप रहो जी। क्यों अपनी जबान गंदी करते हो...देखते नहीं बेटी जवान हो गयी है। गाली देते शरम नहीं आती तुम्हें!” मुरली की माँ संपत पर बिगड़ पड़ी।

“तेरे प्यार ने ही तो उसको आसमान पर चढ़ा दिया है....तुम दोनों मिलकर किसी दिन जान ले लोगी...मुझसे ऊब गयी हो तो कहो...”

“काहे न ऊबूँगी....अगर ऐसा ही रहता तो चार दिनों से तुम्हारी बीमारी के पीछे जाग-जाग कर उपवास नहीं करती। शरम भी नहीं आती

कहते...अब कुछ मत कहना मेरी बेटी को—क्या बिगाड़ा है इसने तुम्हारा ?"

"इसने, इसने तो मेरी रही-सही इज्जत ही ले ली। मेरी नाक कट गयी इसके कारण..."

"तुम आँख मूँद कर चलो तो इसमें मुरली का क्या दोष...उसने तो कहा नहीं था कि सजीवनलाल से झूठ बोलो....ऐब छिपाकर ब्याह करो..." मुरली का पक्ष लेकर वह बोली।

"तुमने भी तो सहमति दी थी..."

"मैं क्यों देने लगी। मेरे माथे पर दोष मत मढ़ो जी, तुम्हारे भतीजे शम्भुआ ने कुल जाल रचा था। घर उजाड़कर तमाशा देख लिया न उसने। और अब मुआ अपना मुँह भी नहीं दिखाने आता है कभी...जाने कहीं मर गया है। सवेरे आने को कह गया था, आया क्यों नहीं...बड़ा तो खयाल रखता है तुम्हारा।"

बूढ़ा संपत पत्नी के ताने सुनता रहा। कभी-कभी डाँट देता तो बुढ़िया और बड़कने लगती। बेचारा चुप होकर रह गया।

नारी के ताने इतने तीखे होते हैं कि पुरुष या तो चुप ही हो जाता है या पूरा विद्रोही बन जाता है। नारी कैसी भी क्यों न हो, जब कोई बात उसके मन में घर कर जाती है तो शीघ्र निकलने का नाम नहीं लेती। उसका मस्तिष्क घृणा, द्वेष और अज्ञानता का कोष होता है। पढ़ी लिखी बहनें कूप मंडूकता की सीमा लांघ कर कुछ सोच विचार भी करती हैं किन्तु गाँव की अशिक्षित बहनें गूलर के कीड़े की तरह दिमाग रखती हैं। उनके विचार संकुचित और भावना संकीर्ण होती है। इसीलिये पग-पग पर अकारण लड़ाई-झगड़ा करने पर उतारू हो जाती हैं। यह बात आज की नहीं सृष्टि के आदि काल से चली आ रही है। दुनिया में जितने युद्ध और संघर्ष हुए उसमें नारी के छोटे दिमाग का सबसे बड़ा हाथ रहा।

अगर नारी में प्रकृति ने आकर्षण न भरा होता तो कोई उसे दो कौड़ी का भी नहीं पूछता। सुन्दर नारियों का दोष तो उनके आकर्षण में ही छिप जाता है।

मुरली की माँ संपत को खरी-खोटी सुनाती रही और बीमार संपत चुपचाप एक कान से सुनता दूसरे से निकालता रहा। आपसी झगड़ों को मन में गाँठ बना कर बाँध लेने से जीवन में कलह उत्पन्न हो जाता है। और दाम्पत्य दुख के काँटों से घिर जाता है। जमाने के अनुभव ने संपत के बालों में सफेदी भर दी है। वह अपनी पत्नी का स्वभाव जानता है तो बिगड़े क्यों?

माँ-बाप के झगड़े ने मुरली के पीड़ित हृदय को और भी दुखी बना दिया। वह हाहाकार हृदय लेकर धीरे से बरामदे में आकर बैठ गयी।

थोड़ी देर तक मन मारे बैठी रही वह। उसका मन घू-घू जल रहा था। अन्तर की व्यथा उमड़कर पलकों की छाया में बरसने के लिये खड़ी थी।

कितनी अभागी है मुरली।

वहाँ पर भी जी नहीं लगा उसका। उठकर खड़ी हो गयी वह।

अभ्यस्त हाथों ने कोने में खड़ी अपनी संगिनी लाठी को उठाया। और टटोलती-टटोलती चिलकती धूप में निकल पड़ी वह। धरती जल रही थी। उसका दिल भी तो जल रहा था।

सूरज धरती पर अँगारे बरसा रहा था। संसार के जीव-जन्तु प्यास के मारे तड़फड़ा रहे थे। मुरली को भी प्यास लगी थी। उसके अधर सूखकर इस तरह फट गये थे, जैसे भीगी जमीन सूख जाने पर फट जाती है।

मुरली यह न जान सकी कि दिन है या रात। अंधों की दुनिया में तो हमेशा अंधेरा ही रहता है। हरदम दुख की कालिमा, पीड़ा देती रहती है। सुख का उजाला कहाँ मिलता है उन्हें।

मतलब यह नहीं कि अन्धे दिन-रात का पता रखते ही नहीं। सूरज की गर्मी और चांद की शीतलता ही उनके मन में रात-दिन का ज्ञान भरती है।

मुरली अपने में खोयी, सोलह साल से परिचित पगडंडियों पर धीरे-धीरे चल रही थी। पगडंडी की गरम धूल से उसके पैरों में छाले पड़ते जा रहे थे, मगर उसे उसकी चिन्ता नहीं थी। लू से भी नहीं घबरा रही थी मुरली। उसने पहले से ही अपने आँचल में प्याज बाँध रखा था।

वह पास वाले बाग में मुड़ी। वहाँ आम के अच्छे-अच्छे पेड़ हैं, वहाँ ठंडी-ठंडी छाँह है। वहाँ कोयल विरहनियों की पीर चुरा कर कूकती है। वहाँ शैतान बालक आकर कोयल के स्वर में स्वर मिला कर चिढ़ाते हैं। वहाँ कोई-कोई चरवाह मस्ती में आकर वंशी पर प्यार की तान छेड़ते हैं। वहाँ पर एक छोटा खुशनुमा तालाब है, जिसकी छाती पर कुलवेग की जवानी हँसा करती है। वहाँ मुरली नित-नित आती है और तालाब के शीतल जल में पैर डाल कर घंटों बैठी रहती है चुपचाप, वह बोलती नहीं है कुछ। वहाँ के वातावरण ने मुरली को देखा है परखा है। मुरली की आँखों में, न तिरछी नजर के इशारे हैं, और न बाँकी नजर के तीर। उनमें सदा एक ही से भाव छाये रहते हैं—और वे हैं शून्यता के।

हाँ, कभी-कभी वह गुनगुना लेती है तो चारों तरफ माधुर्य छा जाता है। उसके मधुर स्वर को सुनने के लिए तालाब की नन्हीं-नन्हीं हिलोरें मस्तक उठा कर उसे निहारने लगती हैं। पेड़ के पत्ते झूमना छोड़ कर अपने में खो जाते हैं। हवा उसकी आवाज का विज्ञापन करने में कसर नहीं रखती। कोयल अपने प्रतिद्वन्दी से ईर्ष्या न कर उसके स्वर-सम्मोहन में बँध जाती है।

मुरली की दृष्टि में टोना नहीं किन्तु स्वर में सम्मोहित करने की शक्ति

तो है। रूप में पूनम का चाँद तो है। तभी तो गाँव के मानवी भँवरें उसके चारों ओर मँड़राते रहते हैं। बग्गू हरामा भी तो उसके रूप पर फ़िदा होकर अपना दिल अपने हाथों पर ही रखे रहता है। शंभू भी कम तारीफ़ नहीं करता उसकी।

और लोग जब उसकी तारीफ़ के पुल बाँधते हैं, तो मुरली सुन कर घृणा से भर उठती है। मगर शंभू जब उसकी बड़ाई करता है तो सुन-सुन कर पुलकित हो उठती है वह। शंभू के स्वर में उत्सर्ग की भावना होती है और लोगों के स्वर में क्षणिक तृप्ति की आकांक्षा।

बढ़ते-बढ़ते मुरली आम के पेड़ों की छाया में पहुँच गयी है। बलती पगडंडी की विवशता भरी कहानी समाप्त हो गयी है। मुरली ने भी शान्ति की साँस ली। उसे लगा जैसे अपनी मंजिल पर आ गयी हो, मगर... एक पेड़ के नीचे लाठी रख कर सुस्ताने लगी वह। कान लगा कर आहट ली। कोई नहीं था। बगीचे का वातावरण खामोश, धरती सोयी, मगर पेड़-पौधे हवा के झोंके से सजग।

उसके मन को असीम शान्ति का अनुभव हुआ। मुरली को एकान्त अच्छा लगा। उसने अपनी गंदी साड़ी की छोर से मुँह पर मोती की तरह उग आये पसीने की बूँदों को पोंछा।

तन उसका पेड़ की जड़ के पास जड़ बन कर पड़ा रह गया। मगर मन मनमाना कहीं घूमने चला गया। शंभू और रामदयाल के मिलन की बात—आदि सोचने में खो-सी गयी वह।

शाम होते-होते शंभू आयेगा। न जाने कैसा खबर लाये, अपना या पराया।

दिन की धूप उतरने लगी। साँझ के चित्र उभरने लगे। सुनसान बाग ग्रामीण बालकों के कोलाहल से जाग पड़ा। वहाँ की शान्ति अशान्ति में परिणत हो गयी। मुरली धीरे से उठ कर तालाब की ओर

चल पड़ी ! वह जानती है न, वहाँ बैठी रहेगी तो उद्दंड बालक परेशान करने लगेंगे । उसकी कोई लाठी छीन लेगा तो कोई उसकी विवशता का मखौल उड़ायेगा ।

धीरे-धीरे संध्या की तस्वीर धरती पर उतर आयी । धुँधलका घना हो क्षितिज के पास से उठने लगा । पंछी बसेरे के लिये उड़ चले । ढोरों के साथ चरवाहे अपने-अपने घर की ओर लौटने लगे । जानवरों के गले में बँधी घंटियों का स्वर चारों ओर फैलने लगा । धूल उड़-उड़ कर गोधूली की संज्ञा लेने लगी ।

गाँव की संध्या कितनी रंजित, कितनी लुभावनी होती है ।

भैंस की पीठ पर बैठा नौजवान चरवाहा दूर झुण्ड बाँध कर जाने वाली ग्रामीण युवतियों की ओर देखकर मनचला बन बैठा है । अपने साथियों को उस ओर दिखाता हुआ गा उठता है—

"कनवा में पहिरे तरकी रे, जिया मारे पतरकी रे ।"

युवतियों ने सुना—सकुचा कर सिमट गयी । दाँतों तले आँचल की कोर दाब ली । पाँवों में गति भर कर शीघ्रातिशीघ्र रास्ता तय करने लगी । उनकी पायलों का रुनझुन बढ़ गया । धरती की छाती हाय-हाय कर उठी । चरवाहों के दिल की तो धड़कन ही बन्द हो गयी ।

मुरली के कानों में भी संगीत की सुरा भर गयी । मगर उस पर मद-होशी का रंग न छा सका । उसे वह सब अच्छा-अच्छा नहीं लगा । क्षण-भर खुशी में खोया मन फिर लौट कर जहाँ का तहाँ चला गया ।

साँझ हो गयी—अब आता ही होगा शंभू ।

समय बीत चला । रात चढ़ने लगी । आसमान की छाती पर छिट-पुट तारे भी निकल पड़े । दिन भर की गरम हवा ठंढी हो चली मगर मुरली का मन जलता ही रहा । उसके अन्तर की आग में जैसे स्थायीत्व भर गया हो ।

धीरे-धीरे तारे बहुत से निकल आये। इतने सारे कि गिनना मुश्किल। अँधेरा बढ़कर भयावह हो उठा, किन्तु शंभू न आया, न आया।

मुरली का हृदय आशंका से भर उठा। कहीं...कहीं...

नहीं-नहीं शंभू भैया इतनी जल्दी गुस्सा नहीं होते। शंभू उसके देवता पर हाथ नहीं उठा सकता। उसके मन में विश्वास भर गया।

गाँव में सात-आठ बजे ही आधी रात आ जाती है। लोग दिनभर की थकान मिटाने के लिये खा-पीकर जल्दी ही सो जाते हैं। कुछ लोग गप्पें मारने और दूसरों की शिकायत में जुट जाते हैं। एक श्रेणी और होती है, जो बहुत नीच हुआ करती है, जो दिनभर की मेहनत की कमाई गाँव की होली में फूँक आते हैं और दिल में देशी शराब की आग भर कर पागल बन जाते हैं। ये ग्रामीण बहुत नीच होते हैं। अज्ञानता और अविद्या का घुन इनके जीवन में इस तरह लग गया है कि धीरे-धीरे नष्ट होते जा रहे हैं। ये पतन के गर्त में गिरने के अभिलाषी हैं। इन्हें उत्थान का पथ अच्छा नहीं लगता। नयी रोशनी से इनके मन के अँधेरे को दूर करना चाहें तो ये पुरानी परम्परा की दुहाई देकर हजारों गालियों के आशीर्वाद से आपका दिल प्रसन्न कर देंगे।

अँधेरा आने पर भी मुरली अपने घर न आयी तो उसके माँ-बाप चिन्तित हो उठे। बाप तो बीमार पड़ा रहा। मगर माँ उसे खोजने निकल पड़ी।

एक जगह पहुँची तो—

"कौन! मुरली की माई! आओ बहिन!...कैसे निकली इतनी रात को!"

ठीक उसी घर के सामने घर में ढिबरी के धुँधले प्रकाश में सोलह बरसों की छटा बदन पर लादे कोई युवती कुछ कर रही थी। इधर की बातचीत ने उसे अपनी ओर खींच लिया।

बोली वह—"मनतोरा मौसी ! कौन है ? किससे बात कर रही हो....कि मुझे ही बुलाया तुमने...आऊँ क्या ?" कहकर वह युवती बाहर आकर खड़ी हो गयी।

"लो, देखा न इस चमक-चम्पो को...निगोड़ी के कान कुत्ते से भी तेज हैं..."

"और तेरी जबान मौसी ! ऐसी है कि कुत्ते भी झख मारें। तभी तो इतनी जल्दी—सुनाई पड़ गया...बोलती नहीं हो, भौं-भौं भूँकती हो तुम।" युवती ने कुछ बिगड़ कर कहा।

"क्यों री मुँहजली ! खीझा कर काटने क्यों दौड़ती है ? कौन-सी बात जहर-सी लग गयी तुझे...राम-राम, आज की लड़कियों ने तो लाज-शरम धोकर पी डाला है....देखा न बहिन तुमने।" मनतोरा मौसी अपना कपार पीटती हुई बोली।

"देखो मौसी ! भला-बुरा मत कहो...लाज-शरम क्या ? कोई झूठ थोड़े ही कहा—सच्ची बात तीर की तरह लगती ही है।"

"हाँ रे हाँ ! अपने बाप की बेटी है न तू। तभी तो...तभी तो..."

"तभी तो क्या मौसी—अपने बाप की बेटी न होऊँ तो क्या तुम्हारे बाप की बेटी बनूँ...आने दो बापू को कहती हूँ...."

"जा-जा कह देना....जैसे इनके बाप की खैरात हूँ...गला तराश लेगा तेरा बाप क्या ? मूँछों की चुटिया पकड़ कर, चिमटों की वो-वो मार मारूँगी कि चिट-पिट, गिट-पिट हो जायेगा। ऐसी-वैसी नहीं मैं—वाह रे इनके बाप—लो न, वह आ गया तेरा बाप।" मनतोरा मौसी ने कहा—"देखो जी अपनी लाड़ली को जरा। मुझको धमकाती है। बित्ता भर की छोरी की शान तो देखो—दैया रे दैया ! ससुराल जायेगी तो सास से कैसे पटेगी इसकी..."

"तुम भी बच्चों के मुँह लगती हो। तभी तो चिढ़ाते हैं सब!" चम्पी के पिता मोठी के पास आकर बैठते हुए बोले।

"क्यों कहते हो इसे! ब्याह हो गया होता तो गोद भर गयी होती!" मोठी ने हाथ झटकार कर कहा—"अभी मैं भी बच्ची थी, मगर क्या मजाल कि बड़े बूढ़ों के आगे जबान चलाती..."

"तुम तो खानदानी हो न!" कुछ हँस कर चम्पी के बाप बोले।

"हटो जी तुम भी ठट्ठा ही करने लगे..." उसकी बात सुन कर मोठी के अधरों पर हँसी आ गयी। बोली—"लो तम्बाखू पियोगे!"

चिलम हाथ में लेकर चम्पी का बाप पीने लगा। दोनों काफी देर तक गप्पें मारते रहे। चम्पी के ब्याह-शादी की बात भी उठी।

मुरली की माँ न जाने कब वहाँ से खिसक गयी थी। उसे इतना मौका कहाँ कि गपड़चौथ में भाग ले सके। दुखी आदमी को तो हँसना भी मुहाल हो जाता है। जो खुद नहीं हँस सकता, उसे दूसरों की हँसी अच्छी कैसे लग सकती है!

मुरली की खोज में वह जग्गू के घर के पास भी गयी। जग्गू को बैठे देखा उसने। उसके मन में घृणा भर गयी। कतरा कर निकल जाना चाहती थी वह। मगर जग्गू की तेज निगाहों की पकड़ में आ ही गयी वह।

जग्गू बोला मीठी आवाज में—"अरी ओ काकी! कहाँ निकली हो इतनी रात में...साँप-बिच्छू का भी डर नहीं लगता तुम्हें!" कहता हुआ जग्गू उठ कर उसके पास गया और उसका हाथ पकड़ कर घर खींच ले आया।

"बहुत दिनों बाद दिखाई पड़ी हो काकी! कहाँ छिपी रहती हो तुम! भगवान कसम! तुम्हें देख कर न जाने क्यों दिल भर आता है। कभी-कभी इस गरीब को दरसन तो दे दिया करो...मौका ही नहीं मिलता नहीं तो हमीं दरसन करने हाजिर होते...और सब तो अच्छा है न! सुना

काका बीमार हैं, क्या बात है ? अभी पिछले दिनों तो बीमारी से उठे थे...फिर गिर गये ?"

"हाँ बेटा ! अब ठीक ही है। भगवान जो करता है, भला ही करता है !" मुरली की माँ ने कहा।

"क्या भला करता है—खाक ! भगवान भी गरीबों को बहुत सताता है काकी। भगवान कसम, यह भगवान का बच्चा कहीं मिले तो मार-मारकर कचमूर निकाल दूँ उसका। शैतान अमीरों के घर में दूध-मलाई चाभता रहता है..." बग्गू ने कहा।

"भगवान को गाली देने से क्या लाभ बेटा !"

"हटाओ भगवान-तगवान को।....अब कैसे हैं काका ? सोच रहा था चलूँ एक दिन भेंट कर आऊँ मगर क्या करूँ। जब चलने को होता, हूँ सर पर काम आ टपकता है...आज कल लगन भी तेज है न...बर्तन गढ़ते-गढ़ते प्राण निकल जाते हैं। रात-रात, दिन-दिन भर काम से फुरसत नहीं। दो दिन से सो भी नहीं सका हूँ...मुरली कैसी है ?"

"उसे ही तो खोजने निकली हूँ। पता नहीं कहाँ भटक गयी है, अभी तक आयी भी नहीं..."

"अंधे लोग भटकते नहीं काकी, उन्हें भटकाया जाता है। क्या कहूँ तुमसे। न कहना ही ठीक होगा। यह तो दुनिया है न काकी ! यहाँ तो सब चलता है।" बग्गू ने कहा।

"क्या सब चलता है ? तेरी बातें समझ में नहीं आतीं।" मुरली की माँ ने कहा।

"न समझना ही ठीक है। समझाने लगूँगा तो उल्टे मुझे ही दुश्मन मान बैठोगी तुम। भलों को ही लोग बुरा कहते हैं काकी !" बग्गू ने दुखी होकर कहा—"मुझे भी तो लोगों ने कम बदनाम नहीं किया। उसी दिन तो काका आकर झगड़ने पर उतारू हो गये। कहने लगे, तुमने

ही सजीवन लाल का कान फूँका है।...तुम लोग चाहे जो कह लो काकी यह तो तुम्हारी मर्जी है। मुरलो को गैर नहीं समझता मैं। मुझे बहन नहीं है, उसी को मानता हूँ। कोई भाई अपनी बहन का बुरा चाहेगा? सोचो तुम्हीं...आजकल उसे देखकर दिल भर आता है। और गाँव के लोग उसे बुरे रास्ते पर ले जाना चाहते हैं। जी तो चाहता है, बुरी निगाह से देखने वालों की आँखें फोड़ दूँ, मगर तुम लोगों का डर लगता है। एक बात कहूँ काकी!"

"कहो-कहो!" मुरली की माँ सुनने के लिये उत्सुक हो उठी।

"जाने दो। क्या करोगी सुनकर...विश्वास नहीं होगा तुम्हें।"

"कहो भी तो पहले।...क्या बात है आखिर?"

"बात तो बहुत है और सोचो तो कुछ है भी नहीं।"

"कह भी तो, मुझसे छिपा मत।"

"जिद करती हो तो बता ही देता हूँ मगर फिर न कहना कि जग्गू ने होशियार नहीं किया था, और किसी से कहना भी नहीं, नहीं तो बवाल खड़ा हो जायेगा।"

"भला, मैं क्यों कहने लगी?

"तो सुन लो! शंभू जो है न काकी, ठीक आदमी नहीं है। मुरली का उसके साथ रहना ठीक नहीं। मेरा तो ख्याल है, उसी ने सजीवनलाल को यह बात..."

"क्या कहता है तू! शंभू ऐसा नहीं हो सकता!" सर हिलाती हुई बोली मुरली की माँ।

"मैंने तो पहले ही कहा था—तुम्हें विश्वास नहीं होगा, मगर जग्गू बगैर सबूत के बात नहीं करता काकी।" जग्गू सफाई देते हुए बोला—"आज ही तो तारापुर की तरफ से आ रहा था वह। रास्ते में मिला

था। पट्ठा बोला तक नहीं, कतरा कर निकल गया। सजीवनलाल ने बुलाया होगा तभी तो...."

"काहे को सजीवनलाल बुलायेगा उसे !"

"तुम्हें मालूम नहीं क्या काकी, रामदयाल दूसरी शादी कर रहा है न ! आज उसकी बारात उठी होगी। वहीं गया होगा शंभू !"

रामदयाल की शादी के बारे में सुनकर चौंक पड़ी मुरली की माँ। ऐसे चौंक पड़ी वह जैसे पैरों के नीचे साँप आ गया हो। उसकी छाती धड़कने लगी।

घबड़ाये स्वर में पूछा उसने—"तू ने कैसे जाना !"

"तारापुर में सम्बन्धी रहता है न मेरा ! वहीं गया था। उसी ने बताया—"मुरली की माँ को बेबस पाकर उसने तीर चलाया—"शंभू बड़ा वैसा आदमी है काकी ! और अपनी मुरली तो पूरी बछिया है...यह ठीक बात नहीं काकी—समझो न ! मुरली की शादी कहीं कर दो जल्दी से...नहीं तो बदनामी का डर आसमान पर चढ़ने लगेगा।"

मुरली की माँ का मन शंभू पर एक बार अविश्वास कर बैठा। जग्गू की बात ठीक निशाने पर लगी।

बोली वह—"क्या बकता है जग्गू तू ! औरत की दूसरी शादी कहीं होती है।"

"होती क्यों नहीं है ? आजकल चलता है काकी !...जवान बेटी और ऊपर से अन्धी, कब तक घर में बिठाकर रखोगी। किसी दिन नाक कट जायगी। शंभू के डोरे में बँध रही है मुरली, जान रखो..." जग्गू ने अपनी बात पर जोर डाल कर कहा।

"चुप रह जग्गू ! शंभू ऐसा नहीं हो सकता।" मुरली की माँ शंभू पर अविश्वास करके भी विश्वास करती जा रही थी—"शंभू को मैं आज से नहीं जानती..."

"खैर, जो समझो तुम ! मानो न मानो शम्भू ने भी दुनिया देखी है काकी। अगर झूठ कहता होऊँ तो किसी दिन तालाब पर जाकर अपनी आँखों से देख लेना। किस प्रकार दोनों रासलीला रचते हैं।...मुरली को खोजने निकली हो न। तालाब पर बैठी होगी। शम्भू के इन्तजार में—जाओ। अन्धे लोग भी आँखों में धूल झोंक देते हैं काकी—समझीं ?" शम्भू ने कहा।

बिना कुछ बोले मुरली की माँ बूढ़े कलेजे में तूफान भर, कर डग-मगाते पगों से अकेली ही तालाब की ओर चल पड़ी।

शम्भू की एक-एक बात उसके मस्तिष्क को चक्कर में डाल रही थी। उसका हृदय द्वन्द्व में फँस गया था। कभी शम्भू पर अविश्वास करने लगती, कभी विश्वास।

तभी—

सामने से दो छायायें आती दीख पड़ीं।

बूढ़ी आँखों पर जोर डालकर उसने देखा—पहचानने का प्रयत्न किया।

एक छाया हचक-हचक कर लड़खड़ाती चल रही थी, दूसरी अपनी—गंभीर चाल।

दोनों समीप आ गयीं। मुरली की माँ ने पहचाना—वह कुछ बोले कि उससे पूर्व ही उधर से स्वर आया—"काकी !"

"शम्भू !" मुरली की माँ ने कहा—"कहाँ थे इतनी रात तक...लोग जानेंगे तो क्या कहेंगे तुम लोगों को ?"

"जब तेरा मन ही डोल रहा है तो दूसरे क्यों न शक करेंगे ?" शम्भू ने कहा। उसे बड़ा दुख हुआ सुनकर।

"मैं तुझ पर शक नहीं करती। दुनिया की बात कहती हूँ...कहाँ थे तुम लोग ?" मुरली की माँ ने पूछा।

"तालाब पर !" मुरली बोल उठी।

"और तू शम्भू !" मुरली की माँ ने पूछा गंभीर स्वर में।

"तुम लोगों में तो मैं भी आ गया काकी !...मुरली रो रही थी। तुम लोग बेचारी को बिगड़ती क्यों हो ?"

"तू झूठ बोलता है शम्भू। तालाब पर नहीं था तू।" मुरली की माँ ने कहा।

"तब तुम्हीं बताओ न कहाँ गया था ?" शंभू ने हँसते हुए कहा।

"तारापुर !" मुरली की माँ बोली।

शंभू चौंक पड़ा। उसका मुँह सफेद हो गया। अँधेरे में उसके मुँह पर से उड़े रंग को कोई नहीं देख सका।

"तुमसे किसने कहा काकी ! भला मैं..."

"तुम मुझे धोखा नहीं दे सकते शंभू ! सजीवन लाल के यहाँ गये थे न ? रामदयाल की शादी..."

"तुम तो एक-एक बात जानती हो काकी...चलो घर चल कर सब बताता हूँ।" शंभू ने गंभीर होकर कहा।

और तीनों थोड़ी ही देर में घर पहुँच गये।

अँधेरे में सोया संपत कराह रहा था। बीमारी और चिन्ता ने उसे बिल्कुल कमजोर बना दिया था।

मुरली की माँ ने दीवट जलाया। घर में घुसा अँधेरा भाग गया। दीवट की पीली रोशनी में बेटी की सूरत देखकर संपत और भी क्रोधित हो उठा। जब शंभू पर नजर पड़ी उसकी तो सान्त्वना मिली उसे।

शंभू पराया था ! मगर अपने बेटे से भी अधिक मानता था संपत उसे। प्रेम ही तो रिश्ते का कारण होता है। दुख के दिनों में जो काम आये, वही तो अपना है।

सम्पत ने शंभू की कहानी तारापुर की सारी बात सुनी। रामदयाल की दूसरी शादी का समाचार सुनकर उसकी थकी हारी जिन्दगी को गहरा धक्का

लगा। बदनी दिल तड़प कर रह गया उसका। उसके मन की दीवार लहरों की चोट खाये कगार की भाँति दुख के सागर में भहरा कर गिर पड़ी।

दुख, अभाव और चिन्ता की शक्ति पाकर उसकी बीमारी बढ़ती ही गयी। दवा-दारू का कोई असर नहीं हुआ। हालत दिनों दिन अबतर होती गयी।

बूढ़ा तन और उखड़ा मन बड़ा बुरा होता है।

सम्पत का मस्तिष्क उद्भ्रान्त हो गया था। वह बड़बड़ाता, गालियाँ बकता। कभी मुरली को अपनी नजरों से दूर हटा देता। कभी उसे अपने कलेजे से बाँध कर घंटों सिसकता रहता।

हरदम मुरली की शादी और शहनाइयों की बात करता। रामदयाल से मिलत और वजीवन लाल से अर्ज करता रहता। कभी शम्भू को गालियाँ देता तो कभी अपने भाग्य का रोना रोता।

लेकिन शंभू को कुछ नहीं कहता वह। उसे अपने पास से हटने नहीं देता था।

और देखते-देखते मौसम बदल गये।

और एक दिन—

दिन ढला, सूरज डूबा। पंछी बसेरा लेने चल पड़े। और संपत, अपने चारों तरफ घूमते दुर्भाग्य-मंडल की चपेट में आ गया।

उसने अपना घर आसमान में बना लिया।

Tragic Trag

चि० वि०

जाड़े की धूप भी कितनी सुखदायी होती है कि जी चाहता है हमेशा खाते ही रहिये। तन से सटाये ही रहने की अभिलाषा होती है हरदम।

जाड़े का सवेरा। सारा गाँव जाग पड़ा है। बड़े-बूढ़े राम-राम करते जागे हैं, जवान रात के अधूरे सपने के बारे में सोचते, हृदय में मीठा दर्द लिये जागे हैं और बच्चे चिंचियाते-रिरियाते, रोते-बिलखते जागे हैं।

अजीब दृश्य है—

सभी लोग ठंडी हवा से बचते हुए किसी आड़ में बैठे हैं, जहाँ धूप है।

सबों का अपना-अपना ढंग है और अपनी-अपनी अदा। कोई चादर के नीचे बोरसी छिपाये ठिठुर रहा है, कोई जल्दी-जल्दी काँपते हुए बीड़ी पीकर गर्मी पाना चाहता है तो कोई हुक्का में ही मस्त है। कोई फटी कथरी ओढ़े है तो कोई कम्बल। कोई सात बरस पुरानी रजाई और कोई अभाव की मार से उघारे बदन। कोई अपनी मुट्ठियों को काँख

के नीचे दबाये है तो कोई थरथराते हाथों को आपस में रगड़ रहा है। कोई कान में गमछा बांधे है तो कोई बन्दरनुमा ऊनी कनटोप। कोई पुआल के भीतर घुसा है तो कोई पूजा-पाठ में व्यस्त है। सर्दी की मार से सभी ऐसे हिल रहे हैं जैसे आंधी में पेड़ के पत्ते।

किसी की किसी से तुलना नहीं। किसी का किसी से मेल नहीं। कोई तूफानमेल है तो कोई देहात की खिचखिच चाल वाली बैल गाड़ी ही। किसी का चेहरा पके फोड़े की तरह फूला है, किसी का परती जमीन की तरह सपाट है। किसी के मुँह पर कछार पर उगे घासों की तरह दाढ़ियाँ तो किसी के मुँह पर धान कटे खेतों की तरह खूंटियाँ। किसी के मुँह पर मार के सफेद निशान हैं तो किसी की आंखों में मनों कीचड़। किसी की नाक बह रही है, किसी को खों-खों खाँसी ही आ रही है।

सबों के व्यक्तित्व में मतभेद है, किन्तु धूप खाने में सभी एक मत।

जग्गू लोहार भी मचिया खींच कर धूप में आ बैठा है। फटी नीम-स्तीन की जेब में से टटोल कर कुछ खोजा उसने। मगर कुछ मिला नहीं।

कुछ मिला नहीं तो दोनों हाथों को चादर के भीतर कर लिया उसने।

फिर बोला—"सुनती हो।"

"......"

जवाब कौन देता। जनूगा तो कथरी ओढ़ कर अब तक रात के सपने जगा रही थी, खाट के नीचे बोरसी धरे।

"कहाँ मर गयी सबेरे-सबेरे...जरा चिलम भर कर तो दे जा। कुछ बोलो भी या कफन-दफन का इन्तजाम करूँ..." जग्गू ने चिल्ला कर कहा।

"अधिक जाड़ा लग रहा हो तो कफन लाकर खुद ही ओढ़ लो... पैसे न हों तो मुझसे मांग लो, तमके।" जनूगा ने भीतर से ही चिल्ला कर

कहा। उसकी नींद टूट चुकी थी मगर आलस वश बाहर नहीं निकल रही थी—"दो चार दिन तुम्हारे नाम पर रोकर सन्तोष कर लूँगी...रोज रोज का रोना तो खतम हो जायेगा।...कभी चैन भी नहीं लेने देते, जैसे इनकी खरीदी बाँदी हूँ..."

"अरे भाई, बाँदी कौन कहता है तुम्हें? तुम तो मेरे दिल की रानी हो रानी!" जग्गू ने कहा।

"अजी, रानी बनाने को रहने दो...महीनों हो गये एक छागल तो बनवा ही नहीं सके, चले हो रानी बनाने...कभी तो खुश होकर कुछ दिया होता।...मेरा तो करम ही फूट गया। करेला की बहू को देखा है तुमने—गहनों से लदी रहती है। मगर तुम्हें तो सिर्फ अपने पेट की हाय-हाय लगी रहती है। मैं मरूँ या जिऊँ, तुम्हें फिकर ही क्या!" कहते-कहते रोने लगी अनूरा।

"लो, लगी न फोनोग्राफ बजाने...अभी चुप भी हो जाओ, सवेरे-सवेरे किच-किच मत लगाओ। चिलम न भरना हो तो मत भरो...मैं खुद भरे लेता हूँ।"

"फोनोग्राफ क्या। जी, कभी मुँह भी देखा है था...."

"मुँह कैसे देखूँ—वह तो कथरी के भीतर छिपा है...उघार कर जरी सामने आओ तो देख भी लूँ..."

"देखो जी सवेरे-सवेरे जी मत जलाओ। झगड़ा ही करना हो तो साफ बात कह दो।" बोली अनूरा।

"झगड़ा करके तुमसे जीतेगा ही कौन!"

"तो चाहते क्या हो तुम!"

"सिर्फ तुम्हें। फिलहाल चिलम भर करदे दो अपने नाजुक हाथों से। बड़ा जाड़ा पड़ रहा है आज तो। बदन का रेशा-रेशा बरफ बनता जा रहा है कहीं कलेजे की धड़कन न थम जाय।" जग्गू बोला—"जी चाहता है..."

"क्या जी चाहता है ?"

"जाड़े में जी क्या चाहता है, जैसे तुम्हें मालूम हो नहीं कुछ ! रात भर तो..."

"चुप भी रहो—कोई रात है क्या अभी ?" अनूरा बोली।

दोनों की बातें क्रोध से उतर कर प्यार पर आ गयी थीं।

अनूरा उठकर चिलम भरने लगी। भर कर उसने भी दो एक दम खींचा। खींचकर उसने बग्गू के हाथों में थमा दी। फिर शीघ्रता से कथरी ओढ़ कर अपनी सुकुमार काया को बोरसी की गर्मी से सेंकने लगी।

बग्गू ने जब चिलम हाथ में ली तो उसकी आग ही बुझ गयी। फूँक मारकर सुलगाया उसने मगर जली नहीं। और जो बुझ जाता है जलता कहाँ फिर।

बग्गू का क्रोध इसी बात पर जग पड़ा।

"क्या भरती हो चिलम। न भरना था तो कह देतीं। कोई काम भी तो दिल लगाकर करो..."

सुनकर अनूरा भी बिगड़ खड़ी हुई। वह भी तो किसी से कम नहीं थी। बोली—"तनाओ मत। लो जितनी आग चाहिये ले लो..." उबलती, गरजती अनूरा बोरसी लेकर आई और बरस पड़ी।

सामने बोरसी पटक दी उसने। आग छितरा गयी। भूसे और अल्लम-गल्लम जितने उसमें भरे थे, इधर-उधर हो गये। एक सोंधी महक चारों तरफ उठकर फैल गयी। बेचारा बग्गू जलते-जलते बचा और उछल कर खड़ा हो गया।

बग्गू के क्रोध में घी की आहुति पड़ गयी। उसे अपना अपमान सहन नहीं हुआ। आखिर था तो मर्द ही। जोश में उठा और लपक कर उसने, भनक कर भागती अनूरा का झोंटा पकड़ लिया।

"अरे, क्या करते हो बग्गू !" तभी किसी ने आकर कहा।

किसी की आवाज सुनी जग्गू ने तो दम्र से अनूपा का झोंटा छोड़ दिया और शरमा कर बोला—"कुछ नहीं शंभू भैया !...कब आये ?"

"जब तुम चील झपट्टा मार रहे थे !" शंभू ने हँसते हुए कहा ।

अनूपा ने भी शंभू को देखा । मुँह बिदोर कर बोली—"अच्छे तो हो देवर जी—सुना, बीमार थे तुम !"

"क्या कहती हो तुम !" जग्गू ने कहा—"बीमार पड़े शंभू भैया के दुश्मन—क्यों शंभू भैया ! बैठो न कि खड़े ही रहोगे ? कैसे टपक पड़े सबेरे-सबेरे ? हम तो सोच बैठे थे । शंभू भैया भूल गये हम गरीबों को । कितने दिन बाद आये तुम । भगवान कसम, तुम्हें नहीं देखता हूँ तो दिन भर दिल घबड़ाता रहता है—अरे !" कहते-कहते जग्गू ने गौर से शंभू की ओर देखा तो चौंक पड़ा, जैसे रात के अँधेरे में कोई भूत देख लिया हो उसने—"तुम्हारी मूँछें, सर के बाल—क्या हो गये शंभू भैया !"

"सम्पत काका का दसवाँ था न आज, इसीलिये" शंभू दुःख के स्वर में बोला ।

"कितना भला आदमी था बेचारा !" बनावटी दुःख के साथ जग्गू ने कहा ।

"हाँ-हाँ, तभी तो तुम्हारा नौ रुपल्ली दिये बगैर चला गया !" अनूपा ने तीर मारा ।

"मौत क्या कहकर आयी थी काका के पास, जो पहले से रुपया देकर जाते ।" जग्गू ने कहा—"रुपये तो आते-जाते रहते ही हैं । वैसे रुपये तो शंभू भैया चुका ही देंगे ।"

"और उनका अपना था ही कौन ? ले दे के देवर जी ही तो हैं । घरबार का भार तो बेचारे के कमजोर कंधों पर ही आ गया ।" स्वर में मुलायमियत भर कर बोली अनूपा—"मुरली का कैसा हाल है—दिखाई नहीं पड़ती ?"

"कोई आँखें मूँद ले तो दिखाई कैसे पड़े!" शम्भू ने कहा— और चलने के लिये उठकर खड़ा हो गया।

"यह लो, हम लोग आँखें मूँद लेते हैं। देवर जी भी खूब कहते हैं। कहाँ चल दिये देवर जी! सवेरे-सवेरे आये तो पानी तो पीते जाओ!"

"हाँ भाई क्यों न पिलाओगी अपने देवर जी को पानी....कभी-कभी हमें भी पूछ लिया करो तनिक। जीवन सुफल हो जाय मेरा भी—" जग्गू ने कहा।

"तुम्हें पूछते-पूछते तो जिन्दगी गुजरी जा रही। तुम सुनो भी तो...." अनूपा ने कहा और एक बार जग्गू की ओर रसभरी आँखों से और दूसरी बार उन्हीं आँखों में घृणा भर कर शम्भू की तरफ देखा।

दोनों की बेकार की बातों ने शम्भू को ऊबा दिया। व्यंग के तीर चलते रहे मगर शम्भू क्रोधित नहीं हुआ। उसके मन में सिर्फ मुरली की चिन्ता थी। बेकार की चिन्ता से अपनी शक्ति नष्ट नहीं करना चाहता है वह।

अनूपा अन्दर चली गयी।

जग्गू थोड़ा पास आ गया शम्भू के। बोला—"नाराज हो गये क्या शम्भू भैया।...सच जानो तुम जब खामोश हो जाते हो तो भगवान कसम, बड़ा डर लगता है...बोलो न नाराज हो क्या?"

"जग्गू! जिस दिन शम्भू के सर पर क्रोध चढ़ जायगा, उस दिन तुम लोगों की कतरनी जबान नहीं रह सकेगी।...गँवारों पर नाराज नहीं होता मैं।" शम्भू ने कहा।

"शम्भू भैया! बड़े हो तो जबान सँभाल कर बात करो। हर बात में गाली क्यों बकते हो....मेरे छोटे मुँह से बड़ी बात निकल जायगी तो तो मुझे दोष मत देना...हम तुम्हारा आदर करें और तुम मुझे गालियाँ

दो आशीर्वाद के बदले !" गरम होकर बोला जग्गू—"हम आदमी हैं शम्भू भैया ! हमें भी क्रोध आता है ! कोई गाजर मूली नहीं। कभी मुकाबला होगा तो छठी का दूध याद आ जायेगा – समझे !"

"तुम्हारी हस्ती जानता हूँ जग्गू !" शम्भू हँस पड़ा।

अनूपा ने दोनों का झगड़ा सुना तो बाहर आयी ! बोली—"क्यों जी लगे न झगड़ने !....नीचों के मुँह लगने की आदत हो गयी है तुम्हारी....छठी का दूध किसे याद दिला रहे हो, अपने शम्भू भैया को ! जनम लेते ही तो माँ को खा गये तुम्हारे भैया तो दूध कहाँ से पाते !" फिर शम्भू की ओर मुखातिब होकर बोली—"दूसरों को क्यों गँवार कहते हो। मुँह में कीड़े पड़ गये हैं....खुद तो नाग बनकर डसते हो सबको और दूसरों के माथे कलंक मढ़ते हो ! कौन नहीं जानता तुम्हारी करतूत....मुरली को पाने के लिये क्या-क्या नहीं किया तुमने !"

"चुप रहो जी तुम ! बीच में क्यों टपकती हो ! यह झगड़ा मेरा और जग्गू का है।" शम्भू अपने पर आक्षेप सहन नहीं कर सका।

"चुप रहो जी तुम !" हवा में हाथ नचाकर बोली अनूपा—"क्यों चुप रहूँ भला ! मुझ पर हुकुम चलाने वाले होते कौन हो तुम ! बड़े आये हैं ताव दिखाने वाले। मेरी ओर आँख फाड़कर देखते क्या हो ! अनूपा कौड़ी जैसी आँखों से डरने वाली नहीं। सब जानती हूँ मैं। दूसरों का घर उजाड़कर तमाशा देखने खूब आता है तुम्हें। क्या बिगाड़ा था मुरली ने जो उसकी शादी रुकवा दी ! क्या बिगाड़ा था संवत ने, जो जहर देकर मार डाला उसे ! कौन सी रियासत मिल गयी तुम्हें !...अब तो सम्पत नहीं रहा। लूटो न मजा। मुरली को लो, उसके घर बार जर-जमीन पर कब्जा कर लो। मीठी-मीठी बातें बोलकर सन्तान बने रहो। मगर अनूपा पर तुम्हारे जादू नहीं चलने को। तुम्हें खूब जानती हूँ मैं। सजीवनलाल से रुपये लेकर एक गरीब का घर उजाड़ते दिल नहीं फटा तुम्हारा।

नरक में भी जगह नहीं मिलेगी तुम्हें।....भोगोगे एक दिन, समझे रहो... कोढ़ हो जायगा तब मालूम होगा।"

"बग्गू! मना कर दो अपनी औरत को नहीं तो अञ्जाम ठीक नहीं होगा..." शंभू क्रोध में भर कर बोला। फिर भी बदला लेने की भावना उसके मन में उदित न हो सकी।

"बड़े आये हैं अञ्जाम वाले। क्या कर लोगे जी तुम मेरा। बहुत देखे हैं तुम्हारे जैसे बिसखोपड़े...आये हैं ताव दिखाने। गिदड़ भभकी किसी और को दिखाना—समझे!"

"भगवान कसम, क्रोध तो बहुत आ रहा है मगर तुम हो औरत! नहीं तो शंभू का हौसला देखती..." शंभू को बहुत क्रोध हो आया।

उसकी भुजायें फड़कने लगीं। उसका गुस्सा सीना तान कर खड़ा हो गया मगर उसका अहम उसका शौर्य, एक नारी पर हाथ उठाते लज्जित हो रहा था।

"शंभू!" बग्गू ने अपनी चादर दूर फेंक कर कहा—"अगर यही बात है तो मरद पर ही हाथ उठाओ। देखें तुम्हारी मर्दानियत। बहुत रंग गाँठते हो तुम! आज आजमा ही लो। तुमने डंड पेला है तो मैंने चाक घुमायी है..."

बग्गू आस्तीन चढ़ाता हुआ सामने आकर खड़ा हो गया शंभू के।

"बग्गू! पहाड़ से टकराना ठीक नहीं!" गंभीर आवाज और जलती आँखों से शंभू ने बग्गू की ओर देखा।

"हवा का, पहाड़ कुछ नहीं बिगाड़ सकता शंभू भैया! हवा उसके सर पर चढ़कर आगे बढ़ने की शक्ति रखती है..." बग्गू ने अकड़ कर कहा।

"बग्गू!" गरजा शंभू।

"शंभू!" उत्तर था बग्गू का।

दोनों एक दूसरे की ओर लपके।

अनूपा चिल्ला पड़ी।

दोनों जवान आपस में गुत्थमगुत्थी करने लगे। शंभू था शक्तिशाली और जग्गू था बहुत कमजोर।

शंभू ने एक झटका दिया और जग्गू पास के बरतनों पर गिर पड़ा। मिट्टी के बर्तन आपस में टकरा कर बज पड़े। सभी चूर हो गये।

"देख लिया न शंभू की ताक़त। अब जा रहा हूँ। फिर मुँह न लगना नहीं तो दाँत तोड़ दूँगा।" कहता हुआ शंभू तेजी से उसका द्वार छोड़ कर पगडंडियों पर बढ़ चला।

उसके चेहरे पर व्यथा के चिह्न थे।

थोड़ी देर पहले का खूँखार शंभू सौम्यता की मूर्ति बन गया था।

शम्भू को जीत कर जाते देख जग्गू दाँत पीस कर रह गया।

"बचा भाग गया" जग्गू बदन झाड़ता उठा।

"भागा नहीं, कहकर गया है...क्यों जी बड़ी हेंकड़ी बघारते थे। एक ही हाथ में चित्त हो गये?" अनूपा ने व्यंग किया।

"चुप रहो जी तुम। सब तुम्हारे कारण हुआ।" जग्गू ने बिगड़ कर कहा उसे।

"क्यों न कहोगे। शम्भू का क्रोध मुझ पर ही उतारो न..."

"अच्छा चुप रहो अब। देखना शम्भू को ऐसा मजा चखाऊँगा कि जिन्दगी भर याद रखेगा...तुम भी मेरी बहादुरी का लोहा न मान बैठी तो कहना?"

"पीठ में छुरा तो सभी भोंक देते हैं, कभी किसी की छाती में भोंको तो पता चले..." अनूपा बोली।

"तुम चुप क्यों नहीं रहती, किसका मनहूस मुँह देख कर उठती हो कि रोज-रोज सवेरे ही झगड़ा करने लगती हो?" जग्गू ने कहा।

"तुम्हारा मुँह ही तो देख कर उठती हूँ...बड़ा अच्छा है न तुम्हारा मुँह !" अनूपा बोली और मुँह टेढ़ा कर भीतर चली गयी।

बग्गू मुँह की खाकर मुँह लटकाये बैठा शंभू से बदला लेकर अनूपा के सामने अपनी शक्ति का सबूत रखने की बात सोचने लगा !

दिन चढ़ने लगा। धूप गरम होने लगी। हरी-हरी दूबों पर बिखरे ओस-मोतियों को न जाने कौन चुरा कर चला गया। काम-धन्धे जाग पड़े। चहल-पहल की दुनिया आबाद हो गयी। फिर वही दिन, वही किसान वही खेत, वही कर्मठता और वही पेट की पुरानी हाय-हाय।

बग्गू भी अनमना-सा चाक पर आकर बैठ गया। बगल में पड़ी मुलायम मिट्टी को अन्दाज से काट कर चाक पर रखा उसने और चाक चलने लगी। अभ्यस्त उँगलियों ने बर्तन गढ़ना शुरू कर दिया। मगर आज बग्गू का मन काम में बिल्कुल नहीं लग रहा था। इसलिए कई एक बर्तन बिगड़ जाते और झुँझला उठता वह।

"सुनते हो !" तभी अनूपा घर में से निकली।

"......" बग्गू बोला नहीं।

"नहीं सुनोगे क्या ?...बहुत नाराज हो गये हो ! झगड़े की बात को गाँठ बनाकर मत बाँधा करो। जीवन में तो होता ही रहता है यह।" अनूपा ने कहा।

अनूपा के स्वर में मिठास भरी थी। बग्गू ने आँखें उठा कर अनूपा के चेहरे पर गड़ा दीं। अनूपा के अधरों पर मुस्कान की रेखा नृत्य कर रही थी। उसके अधरों पर की हलकी हँसी, कुछ दबी कुछ खुली आँखें। क्रूरता और क्रोध की प्रतिमूर्ति श्रद्धा और प्रेम के रूप में कैसे बदल गयी थी, समझ नहीं सका बग्गू।

अनूपा को देख कर आँखें झुका लीं उसने। डंडे से चाक घुमाने लगा। अनूपा थोड़ा और पास आकर बैठ गयी। आँखों में निर्लिप्त भाव

लेकर। उसका आँचल खिसक कर नीचे गिर गया। चोली में कसी छातियाँ साफ दिखाई देने लगी। अनूपा खोयी रही।

बोली—"क्यों उदास हो तुम ?"

"और तुम खुश क्यों हो ?" जग्गू ने सर झुकाये हुए ही कहा—"कारूँ का खजाना हासिल हो गया है क्या तुझे ?"

"तुम्हारा खजाना क्या कम है मेरी खुशी के लिये।" अनूपा ने रस भरी आँखों से उसकी ओर निहारा और मुस्करा कर बोली—"लो गुड़ की चाय बना लायी हूँ, पी लो।"

इस अदा से कहा अनूपा ने कि जग्गू मुस्करा उठा।

"अपने हाथों से पिला दो न...मिट्टी लगी है मेरे हाथों में" जग्गू ने कहा।

"कोई देख लेगा तो ?" अनूपा ने अपने चारों ओर निहारा फिर जल्दी से उसके अधरों से चाय की कटोरी लगा दी। बोली—"जल्दी से पी लो न ! कभी-कभी बच्चे बन जाते हो तुम !"

"बस करो बहुत गरम है..."

"और पियो न।"

"बाकी तुम पियो..." जग्गू बोला और चुप हो गया।

क्षण भर में ही उसके चेहरे पर गंभीरता छा गयी। अनूपा कुछ समझ नहीं पायी।

"फिर कुप्पा फुला लिया न तुमने !...यही तो ठीक नहीं लगता मुझे। जाओ, जा रही हूँ मैं।" अनूपा रूठ कर जाने लगी तो—

"बैठो न !—एक बात है ?" जग्गू ने कहा।

"क्या है ?" अनूपा रुक गयी।

आकर समीप बैठ गयी। जग्गू पानी से हाथ धोने लगा।

"बोलते क्यों नहीं....बात क्या है ?" अनूपा को बग्गू के रंग-ढंग अजीब लग रहे थे आज।

"कोई खास बात नहीं है। जाकर अपना काम करो।" बग्गू ने गंभीर स्वर में कहा। उसकी आवाज में विचित्र तरह की भयानकता थी।

अनूपा को बग्गू के आसार अच्छे नजर नहीं आ रहे थे आज। उसे वह जानती है। बड़ा नीच आदमी है, उसका पति। किस कसाई के हाथ पड़ गयी वह।

अपने फायदे के लिये बग्गू नीच से नीच कार्य करने में हिचकता नहीं है।

अनूपा भुनभुनाती हुई भीतर गयी। बग्गू के पाप की वजह से ही उसके एक भी लड़के नहीं बचे। कैसा आदमी है इतना प्यार पाकर भी पिघलना नहीं जानता। मन नहीं बदलता उसका। हमेशा चालबाजी चुगली और दगाबाजी की ही बात सोचता रहता है।

पति का यह हाल और अपनी सूनी गोद देखकर अनूपा तड़पकर रह गयी। आँखों में मजबूरी के आँसू छलक आये।

नारी की गोद सूनी हो कितने दुर्भाग्य की बात है! सन्तानहीन नारी का जीवन बंजर धरती के समान होता है।

कभी-कभी यही टीस अनूपा के मन में उठती है तो वेदना से पागल हो जाती है वह। चार-चार बच्चे की मौत देखकर विक्षिप्त सी रहती है। उस पर से बग्गू का स्नेह रहित व्यवहार। उसका जीवन कटु हो गया है।

यही उसके अन्तर मन की पीड़ा है, जो कभी-कभी उसकी 'नारी' को अजीब तरह से उद्वेलित कर देती है। उस समय अनूपा नागिन बनकर डँसने को तैयार हो जाती है। भला बुरा उसे कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। बाद में भले पश्चाताप की ज्वाला से जलकर खूब रोती है।

कभी उसके प्रताड़ित हृदय में ममता का श्रोत बह नेलगता है तो गाँव भर के बच्चों को अपनी गोद में स्थान देने के लिये तैयार हो उठती है।

जग्गू को धतूरा पिलाकर ठंढा कर देना चाहती है वह। मगर उसके संस्कार ऐसे हैं कि बिगड़ते नहीं। उस भूखी नारी को जमाने ने शिक्षा दी है कि पति देवता तुल्य होता है। उसे भगवान मानकर पूजन करने में ही उसके जीवन की सार्थकता है। अनूपा धर्म के डर से हमेशा सर झुका लेती है। पाप के नाम से उसकी आत्मा हिल जाती है।

आज कितने दिनों से देवी देवताओं की मनौती मानती आ रही है मगर कुछ नहीं होता है। ओझा-सोझा सभी के मंत्रों को आजमा चुकी है। अनभिज्ञ और अशिक्षित नारी बीसवीं सदी के विज्ञान से परिचित नहीं। किसी डाक्टर से सलाह लेकर लाभ उठाना नहीं चाहती, भाग्य की लकीर पीटना जानती है सिर्फ।

गाँव की शाम और जाड़े के दिन।

घास-फूस और पुरुते खपरैल के घरों से धुँआ अपना मस्तक आसमान में उठा रहा है। जाड़े के दिनों में लोग शाम को ही चूल्हा जला देते हैं। इससे गर्मी भी प्राप्त करते हैं और जल्दी खा-पीकर सो भी जाते हैं। घंटा भर रात बीत जाती है तो गाँव की गलियों में सन्नाटा छा जाता है।

स्त्रियां घर के काम काज में खोयी रहती हैं और मर्द चार-पाँच का गोल बाँधकर हुक्का-चिलम, अंट-शंट, यह-वह, खेती बारी, इनका-उनका, छोटी-बड़ी, काम की बेकाम की, सभी तरह की दुनिया भर की बातें किया करते हैं।

जग्गू के दरवाजे पर भी दो चार जुटे हैं। बीड़ी के धुएँ उड़ रहे हैं। मन के गुबार निकल रहे हैं। सभी मन के काले, मुँह के मीठे दीख रहे हैं।

"क्या कहते हो जग्गू भैया! तुम्हारे एक इशारे पर जान हाजिर!

तुम्हें कोई छू दे और हम चुप रहें—शरम की बात है।...क्यों बे करेला के भतीजे, चुप क्यों है।"

"हाँ बे, परोरा, उल्लू के पट्ठे। कौन सी बड़ी बात है। कितनों को गाड़ दिया और पता नहीं चला, बड़े-बड़े मूँछोंपर ताव देते सामने आये और चित्त होकर चले गये।"

सभी की आँखें लाल-लाल थीं बिल्कुल सुर्ख़।

उनके मुँह से गालियाँ निकलती थीं और शराब की दुर्गन्ध भी। जबान लड़खड़ाती, लटपटाती, ठहाके गूँजते और मतलब की बातें होतीं।

"साले डर क्या दिखाता है नींद आ रही है क्या तुझे। पचा नहीं सकते तो इतना ढाल क्यों लेते हो।" परोरा ने करेला से कहा।

"पचा तो तुम्हें जाऊँ गदहे कहीं के। शराब क्या चीज है। तेरी आँखें प्याज बनकर कपार पर क्यों चढ़ रही हैं। लगता है तेरी जान ही निकल रही है।" करेला ने कहा।

"गदहा क्यों कहता है बे। हरामजादे।" तड़प उठा परोरा।

"अरे तू गदहा तेरा बाप गदहा, तेरे बाप के बाप का बाप गदहा-सौ बार गदहा-हजार बार गदहा।" करेला ने चीख-चीख कर कहा।

"तुम्हारा नाना गदहा, तुम्हारा मामा गदहा, तुम्हारा पूरा खानदान गदहा, उल्लू कहीं का।"

दोनों झगड़ पड़ने पर उतारू हो गये। बब्बू ने दोनों को समझाया। मगर वे दोनों मानने को तैयार नहीं थे।

"छोड़ो उन दोनों को बब्बू भैया। लुच्चे हैं दोनों। जरा-सी पी लेते हैं तो होशोहवास खो बैठते हैं।..."

"क्या कहते हो मल्लू भैया। हम तो अपने होश में हैं। जरा दिल

बहला रहे ये गालियाँ बक कर...गाली बकने से जुकाम नहीं होती न।" परोरा ने कहा।

"हाज़मा भी ठीक रहता है क्यों परोरा!" करेला ने कहा।

"हाँ बे! अब चुप रह नहीं तो ये लोग नाराज हो जायेंगे। अपनी खुशी के लिये दूसरों को नाराज करना मुनासिब नहीं, क्यों!"

"ठीक कहते हो तुम!"

और दोनों चुप हो गये।

"तुम लोग सोच लो। शंभू से भिड़ना आसान बात नहीं, पूरा हाथी है वह।" जग्गू ने कहा—"तुम लोग चींटी हो उसके आगे।"

"सुनते हो मल्लू भैया! जग्गू भैया क्या कहते हैं—हम लोग चींटी है।" करेला ने कहा—"चींटी जब हाथी की सूँड़ में घुस जाती है तो हाथी छटपटाकर मर जाता है। हमें ऐसा वैसा मत समझो जग्गू भैया! जिसकी आँख बता दो, काजल चुरा कर ला दूँ!"

"ठीक है, फिर तय रहा।" जग्गू ने कहा।

"बिल्कुल तय" सबों ने कहा।

"कल अमावस्या है। रात खूब अंधेरी रहेगी...कल ही ठीक पड़ेगा।" जग्गू ने धीमी आवाज में कहा।

"कहो तो जान से मार डालूँ और कहीं तालाब कुआँ या जमीन में..."

"नहीं जान से मारना ठीक नहीं होगा...उससे अपनी जान पर भी खतरा आ जायेगा।"

सभी तय करके चलने के लिये उठे। रात काफी बीत चुकी थी। अँधेरा चारों तरफ काँप रहा था। आसमान से उतर-उतर कर ओस की बूँदें धरती के पेड़-पौधों पर बैठ रही थीं। सर्दी कड़ाके की पड़ रही थी। सभी अपने को कम्बल में लपेटे बाहर निकले।

"एक बात है जग्गू भैया !"

"क्या ?"

"वह जो अद्धा बच गया है न..."

"अच्छा" और जग्गू ने परोरा के हाथ में शराब की आधी-खाली बोतल थमा दी। उसे उसने कम्बल के नीचे छिपा लिया।

उसी समय कोई छाया दरवाजे की आड़ से निकल कर बगल के घर में घुस गयी।

लोगों को आहट भी नहीं मिल पायी थी कि कोई उनका भेद ले रहा है। जग्गू के चेहरे पर मौत की तस्वीर नाच रही थी।

जब वह भीतर गया। अनूपा को कथरी ओढ़े, सोये पाया उसने। उसने उसे जगाया नहीं। बगल के पुआल पर सो गया। उसके मन में बदले की भावना उग्र रूप धारण करती जा रही थी।

अमावस्या के अँधेरे में शंभू को मारकर बदला लेना चाहता है वह। आज का इन्सान कितना नीच हो गया है। सामने की लड़ाई में जीत नहीं सकता है तो धोखे से जान ले लेता है।
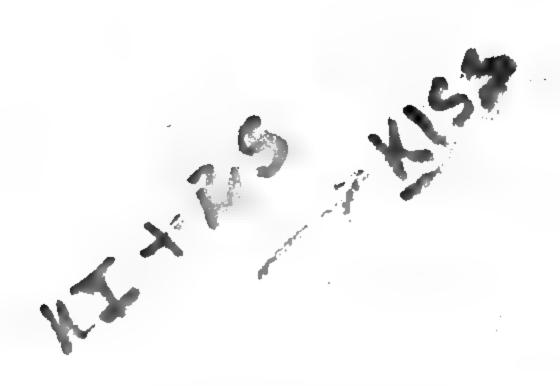
जब से मुरली ने रामदयाल की दूसरी शादी के बारे में सुना है। उसके धड़कते कलेजे पर हिमालय भहरा पड़ा है। उसके सारे अरमान एक ही ठोकर में धूल हो गये हैं। आशा की ज्योति बुझ गयी है, फिर भी जी रही है वह। बुझे हुए आशा-दीप से उठती धूम्र रेखा में अपने जीवन के सुख को उड़ते देख रही है। अपनी अन्धी आँखों की अँधेरी दुनिया में न जाने किस ज्योति का सम्बल लिये जीवन में जीने की गति भर रही है वह।

शंभू ने सोचा था—रामदयाल की शादी के बारे में सुनकर मुरली अपना सर पटक कर जान दे देगी। एक नारी कितनी भी उदार क्यों न हो, वह अपने पति के साया में सौत को खड़ी नहीं देख सकती।

मुरली ने छाती पर पत्थर रखकर सारी बातें सुनी। खामोश रही। क्योंकि वह अंधी है और यही उसकी विवशता है।

जो नारी अपने पति का सुख नहीं पा सकती, सुख नहीं निहार

सकती, वह सौत के नाम से डरे ही क्यों ? सो डरी नहीं वह, बुरा भी नहीं लगा उसे।

उस दिन शंभू तारापुर से लौट कर आया था। उसके आने से मुरली को बड़ी खुशी हुई थी। मगर वह क्या जानती थी कि शंभू ऐसा समाचार लेकर आयेगा, जिससे उसकी सारी उम्मीदों पर पानी फिर जायगा।

शंभू के आते ही मुरली ने पूछा था—"तुम आ गये शंभू भैया !... आ गये तुम। मेरा मन बहुत घबरा रहा था। तुमने मेरे लिये कितना दुख उठाया। तारापुर बहुत दूर है न—थक गये होगे तुम ! बैठ कर सुस्ता लो।" फिर संकोच में भर कर बोली—"कैसे हैं ?"

"........"

मुरली बकी, किन्तु उसके मीठे स्वर के सम्मोहन से शंभू विभोर न हो सका। शंभू पत्थर बना बैठा रहा सर झुकाये। उसके चेहरे पर मुर्दनी छायी थी। लग रहा था जैसे रात का अँधेरा शम्भू के चेहरे पर छा गया हो। मुरली उसकी उदासी कैसे देखती।

शम्भू की खामोशी ने मुरली के मन में भय की सृष्टि कर दी। उसकी खामोशी के पीछे उसे भयानक तूफान दीख पड़ा।

"शंभू भैया ! तुम चुप ही रहोगे ? मुरली के लिये बोलोगे भी नहीं तुम।" मुरली ने आवेश में शंभू का हाथ पकड़ लिया।

उस स्पर्श में पीड़ा, निराशा और विचित्र प्रकार की शीतलता थी। जाड़े की रात से भी अधिक शीतलता, बर्फ जैसी।

"शंभू भैया ! तुम्हारा इन्तजार करते-करते थक गयी हूँ। मैं मेरा दिल बहुत घबड़ा रहा है। भगवान के लिये बोलो। क्या बात हुई झगड़ा रगड़ा तो नहीं कर बैठे ?"

"मुरली, मेरी बहन !" और आगे नहीं कह सका था शंभू।

दुख के आवेश में आकर उसने मुरली को अपने कलेजे से बाँध लिया था। उस बन्धन में कितना स्नेह, कितनी ममता भरी थी।

और मुरली बिना कहे बहुत कुछ समझ गयी थी।

बोली थी सिक्त स्वर में—"तुम सच-सच कह डालो शंभू भैया। डरो मत मुरली सुन कर मर नहीं जायेगी। दुख सहते-सहते मेरा मन पक गया है। जिसकी बारात आकर लौट गयी—तब जान नहीं दे सकी तो अब क्या देगी....मेरे भाग में दुखही लिखा है।"

"मुरली तू नहीं सुन सकेगी!"

"शंभू भैया! मुरली का मन इतना कमजोर नहीं। जिसी को आँखें न हो इससे बढ़ कर दुख क्या हो सकता है। किसी को देख नहीं पाती यहाँ तक कि अपने आप को भी नहीं और तुम्हें भी नहीं...तुम कितना चाहते हो मुझे!...उनकी कुशलता भर कह दो, बस मुरली को सुख मिल जायगा।" मुरली ने सर्द आह भर कर कहा।

"वह बहुत अच्छा है मुरली!" एक लम्बी साँस खींच कर छोड़ते हुए शंभू ने कहा—"बहुत अच्छा है।"

"बस शंभू भैया! मुझे सुख मिल गया।" मुरली ने करुण स्वर में कहा—"तुम्हें पहचाना तो..."

"तुम्हारा पति बड़ा आदमी है मुरली।....उसे अपने कामों से फुरसत मिले तब तो किसी की ओर देखे।" शंभू ने कहा।

"मेरे बारे में कुछ?"

"देख मुरली! तू तो धीरे-धीरे सारी बात उगलवाना चाह रही है।" शंभू ने मधुर स्वर में डाँटा।

"जी नहीं मानता भैया!...बताओ न!"

"बहुत कहा-सुना मगर...जो हीरे को हाथ में लेकर कद्र नहीं दे...

सका वह दूर जाकर क्या दे सकता है।" शंभू ने कहा—"वह पछतायेगा मुरली। जो दूसरों को दुःख देता है उसे भगवान सुख नहीं देता..."

"तुम क्या कहते हो शंभू भैया। वे मेरे देवता हैं। उनका दिया दुख भी मेरे लिए वरदान है।"

"वह देवता नहीं है, नीच है पूरा...शंभू के स्वर में घृणा थी।

"शम्भू भैया!" चीख पड़ी मुरली। उसने अपने कानों पर हाथ रख लिये। बोली—"भगवान के लिये फिर ऐसा मत कहना!"

"क्यों न कहूँ...उसने तुम्हारी लहलहाती जिन्दगी में पतझड़ ला दिया। आग के सात फेरे लगा कर भूल बैठा तुझे...अपने सुख के लिए नयी दुनिया बसा कर मौज करेगा वह...वह दूसरी शादी करने गया है आज सुन लो कान खोल कर। आज शाम को उसकी बारात उठी है।"

मुरली ने सुना। स्तब्ध रह गयी। उसे काटो तो खून नहीं छुओ तो जीवन नहीं, हिलाओ तो कम्पन नहीं।

"चुप क्यों हो गयी तू। बोल तेरे देवता ने कैसा वरदान दिया तुझे!"

"बस करो भैया! जले पर नमक मत छिड़को। इस अभागिन पर रहम करो। अगर वह शादी करके सुख पा सकता है तो उसे पा लेने दो। मुरली हमेशा दुआयें ही देती रहेगी।...जोड़ी सलामत रहे। मैं अंधी हूँ शंभू भैया, मैं क्या सुख दे सकती हूँ। अंधों को कौन चाह सकता है!"

"मैं क्या तुम्हें नहीं चाहता मुरली!"

"तुम्हारे आसरे ही तो साँस ले रही हूँ!"

"अब रामदयाल की बात न करना मुरली। उसकी उम्मीद छोड़ दो!" शंभू ने कहा।

"उम्मीद मौत के साथ ही साथ, साथ छोड़ती है भैया!...वे जितना ठुकराते जा रहे हैं, दिल और अधिक प्यार करता जा रहा है। दिल की

मजबूरी बड़ी अजीब होती है ।" कहते-कहते मुरली के गले में करुणा आ बैठी थी। आंसू से स्वर भीग उठा था।

मुरली के सारे सपने बिखर गये थे। आशाओं के महल गिर पड़े थे। मगर वह उम्मीद लेकर ही जी रही थी। उम्मीद भी अजीब चीज होती है। हर कदम के बाद सांस में ताकत भरती है। जिस दिन दुनिया से उम्मीद नाम की वस्तु उठ जायगी, उस दिन आदमी नाम का जीव दिखाई नहीं पड़ेगा।

"दिल जिसे चाहता है, उसे ठुकरा नहीं पाता है शंभू भैया ! चाहे वह कितना भी बुरा आदमी क्यों न हो.. तुम्हीं अपने को लो। तुम्हारे बिना मन नहीं लगता मेरा...तो उसे कैसे भुला सकती हूँ ? उसके बिना मेरी जिन्दगी में कुछ भी नहीं..."

और उसके बाद शंभू कुछ नहीं बोला। बोलता भी क्या !

इस तरह दिन गुजर गये। मुरली का बापू मर गया। मुरली को नयी पीड़ा मिली। तड़प उठी।

शंभू रोज मुरली को सान्त्वना देकर उसके आंसू सुखाने का प्रयत्न करता। मगर आंसू का कोश इतना सीमित तो नहीं होता कि आदमी उसे लुटाकर गरीब बन सके।

दिन गुजरते जाते और मुरली के अन्तर में बीते दिनों की स्मृतियाँ, उमड़ा-घुमड़ा करतीं, और वह बरसे बिना रह नहीं पाती।

आज कल मुरली सूखकर बबूल का कांटा बन गयी है। हाय री मुरली, किस्मत ने खूब पीटा है उसे। इतना कि उसके स्वर से आह के सिवा और कुछ नहीं निकलते। पहले बोलती तो लोग कान हाथों पर लेकर सुनते रहते। गाती तो बाग के पेड़ पौधों तक झूम उठते, तालाब की लहरें शान्त होकर सुनने लगतीं, मछलियाँ सर निकालकर नाचने लगतीं।

अब तो वह पतझड़ की मार खाये उस पेड़ की ठूँठ की तरह है, जो वसन्त आने पर भी अपनी निरीह स्थिति त्याग नहीं पाता।

भगवान आँखों की रोशनी छीनने के साथ उसके दिल की धड़कन, पलकों की कोरों पर बार-बार टकराने वाले आँसू के सागरों को भी छीन लेता, तो कितना भला रहता।

मुरली का मन घर में नहीं लगता। वैसे तो कहीं भी नहीं लगता। हाँ, थोड़ा-थोड़ा तालाब के किनारे लग जाता है क्योंकि वहाँ उसे एकान्त मिलता है। और वह सन्नाटे का दामन थाम कर जी भर रोती है। रोने से मन हलका तो हो जाता है, पर पीड़ा हरी हो जाती है, जो हृदय को मथ-मथ कर विचलित कर देती है।

बिना खाये-पीये मुरली तालाब की टूटी सीढ़ियों पर आकर बैठ गयी है। फूल-सा मुखड़ा मुरझाया है। अंधी आँखों की पलकों में से आँसू चू पड़ने को व्याकुल हैं। मन भारी है, मस्तिष्क चिन्ताकुल है।

घुटने पर अपनी ठुड्डी रखे, पता नहीं किस चिन्ता में लीन है।

तभी—

तालाब में किसी ने ढेला फेंका। गोल-गोल लहरें उठीं और दूर-दूर जाकर खो गईं।

मुरली को अपने पीछे किसी की आहट मिली। वह सजग हो उठी।

"कौन!...शंभू भैया!" मुरली के स्वर मुखर हुए।

"हाँ मैं ही हूँ...क्यों री पगली...तूने जाना कैसे कि मैं ही आया हूँ...पीछे आँखें हैं क्या तुझे!" शंभू मजाक करता हुआ, पास आकर बैठ गया।

"जिसे आगे आँखें नहीं शम्भू भैया! उसे पीछे क्या होंगी...मन तुम्हारे बारे में ही सोच रहा था। इसीलिये सोचा तुम्हीं होगे...दूसरा कोई मेरे पास आयेगा भी कौन!" मुरली बोली।

"देख मुरली तेरी यह उदासी मुझ से अब नहीं देखी जाती...तेरा फूलचेरा जैसा मुखड़ा सूखे पत्ते जैसा पीला होकर मुरझा गया है...जो बात आसमान का तारा सिद्ध हो गयी है, उसके पीछे जान देना मूर्खता है..."

"जान भी दे सकती तो दे देती भैया !...मगर वह भी तो नहीं दे पा रही हूँ !...हाँ देने की तैयारी जरूर कर रही हूँ !" मायूसी भरी आवाज में बोली मुरली।

"जान देने की तैयारी यहाँ सभी करके आते हैं मुरली !...कोई क्या अमर होकर आया है यहाँ...जान भी देना तो आसमान के पीछे नहीं, जमीन को देना..." शम्भू गंभीर स्वर में बोला।

"तुम कैसी बातें करते हो शम्भू भैया !...धरती पर हो तो लोग मरते हैं...आसमान में रखा ही क्या है !"

"चाँद तारे हैं मुरली, बड़े गोरे, बड़े लुभावने...जी तो वहीं जाने को चाहता है...मगर..."

"अगर-मगर क्या ! तो जाते क्यों नहीं...मना करता है क्या कोई !" बात तो हँसी की थी मगर दोनों गंभीर थे।

"जमीन पर ही आसमान की दुनिया मिल जाय मुरली...तो वहाँ जाने से फायदा !"

"तुम तो धरती पर आसमान रखने की बात करते हो शम्भू भैया ! गाँव वाले सुनेंगे तो तुम्हें पागल कहने लगेंगे, ऐसी बातें फिर न कहना !"

"तुम मेरा विश्वास नहीं करती क्या...आँखें होतीं तुझे तो देखती !"

"तुम बोलो न, देख लूँगी !"

"वह दुनिया तू है मुरली...और चाँद है तेरा मुखड़ा !" उसके चेहरे पर हाथ फेरते हुए शम्भू ने कहा।

और शम्भू ने मुरली का हाथ पकड़ लिया। मुरली स्नेह पाकर उमड़ पड़ी। दुखी आदमी को सच्ची सहानुभूति बहा देती है। अपनत्व के स्पर्श ने मुरली को रुला दिया। शम्भू कितना चाहता है उसे।

"लोग कहते हैं तुम्हारी सूरत भयानक है शम्भू भैया! पर विश्वास नहीं होता....जिसका दिल इतना साफ हो सकता है, तालाब के पानी की तरह वह बदसूरत कैसे हो सकता है?"

"तालाब का पानी साफ भले ही मुरली, मगर उसकी छाती पर तो काई छायी रहती है...लोग काई पसन्द करेंगे कभी...."

"तालाब की छाती पर कमल के फूल भी खिलते हैं शंभू भैया!"

"मगर कोई-कोई तालाब तुम्हारी अन्धी आँखों की तरह अभागा भी तो होता है ....!" शंभू की व्यथा स्वर में बोल रही थी।

मुरली ने अनुभव किया कि शंभू अपनी बदसूरती के बारे में सुनकर दुखी हो उठा है। उसे सुख देने के लिये बोली—"लोग न चाहें तो क्या, मुरली तो चाहेगी ही तुम्हें..."

"तुम्हारी आँखें होतीं तो ऐसा नहीं कहती मुरली!..."

"कभी आँखें हो पातीं तो समझ पाते तुम...पर" कहती-कहती मुरली रुक गयी। जिस बात की उम्मीद ही नहीं, उस बात के बारे में सोचने से लाभ ही क्या।

मुरली चुप थी। शंभू भी वैसा ही था। पर उनके मनका उद्वेलन सजग था, विचार क्रियाशील थे। पीड़ा मुखर थी। साँस भी चल रही थी—थकी-थकी।

एक ब एक मुरली व्यग्र होकर उठ खड़ी हुई। शंभू उसे अप्रत्याशित ढंग से उठते देख घबड़ा उठा।

बोला—"क्या बात है मुरली। हुआ क्या?"

"शम्भू-भैया! अब नहीं जिया जाता। मन बहुत घबड़ाता है। दिल

में बड़ा दर्द उठता है।...उसके बिना मेरी जिन्दगी वीरान मालूम पड़ती है। मुझे उसके पास ले चलो!" बेचैनी से बोली वह।

"किसके?"

"उस निर्मोही के पास।" बैठ कर मुरली ने कहा।

"समय आने दो मुरली! बारह बरस बाद तो घूरे के दिन भी फिरते हैं, तू तो इन्सान है।...इतना घबड़ा उठेगी तो कैसे काम चलेगा?" शम्भू ने सान्त्वना देते हुए कहा।

"आखिर यह बारह बरस का समय बीतेगा कब भैया! तब तक तो दुनिया बदल जायगी।" मुरली ने कहा।

"धीरज से काम ले पगली। समय इन्सान के हाथ के बाहर है। आज का इन्सान धोखा दे सकता है समय नहीं दे सकता है। वह स्वयं आता है।" शम्भू ने समझाते हुए कहा।

"शम्भू भैया मौत भी कहकर नहीं आती। तुम्हारे समय के पहले कहीं मौत आ गयी तो...अभी जिन्दगी का वक्त है। मुझे ले चलो उस निष्ठुर के पास। उसके चरणों में ही जान देने की तमन्ना है।" मुरली ने गीली आवाज में कहा।

"चुप रह मुरली! जल्दीबाजी में सारा काम बिगड़ जाता है।"

"जिसकी किस्मत बिगड़ जाती है उसका काम हमेशा बिगड़ता है शम्भू भैया! चाहे देर में करो चाहे जल्दी से। न ले चलना हो तो बात दूसरी है। मुझे आँखें नहीं शम्भू भैया, मगर चलने के लिए दो पैर हैं। टटोलती-टटोलती पहुँच जाऊँगी और उस निर्मोही के पाँव पर गिर कर अपने सोहाग की भीख माँगूगी।" मुरली के स्वर में दृढ़ता थी।

"वह तुझे ठुकरा देगा मुरली।"

"उसकी ठोकर से मौत मिलेगी तो स्वर्ग ही मिलेगा, मगर जिन्दगी की

ठोकर तो तबाह कर डालेगी मुझे।....शंभू भैया! तुम्हारे पांव पड़ती हूँ मुझे ले चलो!"

"........."

शंभू गंभीर होकर कुछ सोचता रहा।

"शंभू भैया, सोचते होगे तुम कि मुरली को आँखें नहीं तो मोह किसी का क्यों सताता है। मोह तो दिल से उठता है भैया! बहुत पीर उठती है कि रोते-रोते जीवन आँसू बनकर बहता जा रहा है। मुझपर तरस नहीं आता क्या तुम्हें! अगर नहीं जाओगे मेरे साथ तो, जान रखो मुरली का मरा मुँह देखने लगोगे। इसी तालाब में कूद कर जान दे दूँगी...और उस समय पछताओगे तुम। मुझे पुकारोगे, मगर मुरली को तुम्हारी पुकार वापस नहीं ला सकेगी। मुझ जैसी बहन फिर नहीं पाओगे शंभू भैया! और दूसरे जनम में न जाने तुम्हारे जैसा भाई मिल सकेगा या नहीं!" कहते-कहते मुरली आँसू बहाने लगी।

"चुप रह मुरली! अधिक मत बोल! नहीं तो दूँगा एक आध चपत!...तेरे आँसू मुझसे नहीं देखे जाते। तेरे सुख की खातिर शंभू अपनी जान बिछा देगा पगली!"

"तो तुम चलोगे शंभू भैया! तुमसे यही उम्मीद थी।" मुरली मन ही मन प्रसन्न हो उठी। मगर अपनी खुशी को जाहिर नहीं होने दिया उसने। छिपाते-छिपाते भी उसके म्लान मुख पर प्रसन्नता की लो झलक से पड़ उठी। अधरों पर मुस्कान की रेखा खिंच गयी।

शंभू ने देखा—देखता रह गया। युगों के बाद उसने मुरली के चेहरे पर ऐसी दीप्ति देखी थी। मिलन की आकांक्षा में कितनी प्रसन्नता निहित रहती है यह कोई मुरली के दिल से पूछे।

"तुम कितने अच्छे हो शंभू भैया!" और मुरली ने शंभू का हाथ

अपने अधरों से चूम लिया। मुरली के स्वर में उसके हृदय का सारा उद्‌गार निकलकर बाहर आ गया था।

"लेकिन मुरली!"

"लेकिन-वेकिन क्या शंभू भैया!"

"काकी तुम्हारे बिना अकेली कैसे रह सकेगी? पागल बनकर जान न दे देगी? अपनी माँ का मोह नहीं तुम्हें?" शंभू ने कहा।

"मुझे मोह-माया मत दिखाओ भैया!"

"उसने तुम्हें कलेजे से लगाकर पाला है मुरली! उसने तुम्हें बड़े अरमान से सँवार कर बड़ा किया है। तुम्हें काकी का खयाल करना ही चाहिये। यह जान रखो मुरली, पति दूसरा मिल सकता है, माँ दूसरी नहीं मिल सकती..."

"शम्भू भैया!"

"दूसरा पति मिलने पर पति ही कहलायेगा। दूसरी माँ तो सौतेली हो जाती है मुरली!"

"बस करो शम्भू भैया! जान गयी मैं कि मेरे सुख से अधिक माँ के सुख का खयाल है तुम्हें। मैं घुटकर मर जाऊँ यही चाहते हो तुम! अगर मैं मर जाऊँगी तो कौन सहारा रहेगा उसका—बोलो? अगर अपने पति के चरणों में स्थान मिल गया तो माँ को भी स्वर्गीय सुख मिलेगा। उसे अपने पास बुलाकर रख सकती हूँ या उसे रुपये-पैसे दे सकती हूँ।...सोच लो तुम, मुझे चाहते हो अधिक या माँ को?...मेरा निश्चय यही है!" मुरली के स्वर में दृढ़ता थी, हिमालय जैसी दृढ़ता।

आखिर मुरली के आँसुओं ने शम्भू को विचलित कर दिया। वह तारापुर जाने के लिये तैयार हो गया।

मुरली ने अपने माँ के बारे में कुछ भी नहीं सोचा। आदमी की एक उम्र होती है—एक समय होता है। उसे कहते हैं युवा अवस्था। ए

वक्त के दायरे में अरमान बसते हैं, उमंगें उठती हैं, सपने जागते हैं, पीड़ा मचलती है। ऐसे में आदमी किसी की नहीं सुनता, सिर्फ सुनाता है। मुरली भी उसी वक्त के तकाजे में गिरफ्त थी। वह अपने दिल की दुनिया के लिये सारी दुनिया पर ठोकर मारने को तैयार थी।

तालाब की छाती पर संध्या की छाया नृत्य कर उठी।

शंभू मुरली की उँगली थामे गाँव की ओर चल पड़ा। उसका सर झुका था। मुद्रा गंभीर थी। वह सोच रहा था—मुरली को तारापुर ले चलना क्या ठीक होगा? मुरली को रामदयाल नौकरानी बनाकर भी रखना चाहेगा?

"मुरली फिर सोच ले। ऐसा न हो कि घर से निकले कदम किसी घर में न पड़ सकें। सारी जिन्दगी ठोकरों में गुजर जायगी..."

"मैंने सोच लिया है...ठोकर से नहीं डरती मैं।"

"तू कहती है कि तू मुझे प्यार करती है—मेरा प्यार तुझे मिला नहीं सकता।"

"भाई का प्यार और होता है शंभू भैया। पति का प्यार और होता है। एक सहारा देता है, दूसरा जिन्दगी देता है। सहारा और जिन्दगी दोनों चाहिये मुझे। तुम्हें खोकर जिन्दगी का सहारा नहीं खोना चाहती। बिना सहारे की जिन्दगी नहीं चल सकती शंभू भैया।" मुरली ने करुण स्वर में कहा—"तुम्हें खोकर राखी का अधिकार छुट जायगा उसे खोकर माँग का सिन्दूर...।"

मुरली की बेबसी ने शम्भू को भी बेबस कर दिया। वह अजीब उलझन में फँस गया। वह क्या करे और क्या न करे?

"मुरली मैं कुछ सोच नहीं पाता...रामदयाल ने दूसरी शादी कर ली है।"

"मुझे मालूम है भैया ! अपनी ससुराल में दासी बनकर भी रह सकूँ तो सौभाग्य ।" मुरली ने कहा ।

"ठीक है मुरली मैं चलूँगा...ले चलूँगा तुम्हें ।" शंभू मुरली के आँसुओं में बह गया ।

सुनकर मुरली फूली न समायी । आंखों से रोती रही, और अधरों से मुस्कराती रही वह ।

थोड़ी देर बैठने के बाद वे उठे । मुरली खुश थी और शंभू था सोच में डूबा ।

शंभू की उँगली थामें मुरली चिर परिचित पगडंडी पर चली जा रही थी शंभू जैसे भाई पर गर्व था उसे । अपना न रहते हुए भी उस पर जान देने के लिए तैयार रहता है हरदम ।

दोनों चुप थे ।

गाँव समीप आ गया । शाम सर पर चढ़ आयी थी । धुँधलका बढ़ता चला जा रहा था । शंभू को बढ़ते अंधकार में भविष्य का अंधेरा दृष्टिगोचर हो रहा था । लेकिन मुरली क्या जाने कुछ, उसे तो हमेशा अंधकार ही दीखता रहता है । वह तो टटोलकर चलना जानती है । आशा-निराशा के समन्वित रूप देखती है वह ।

दोनों बग्गू के घर के आगे पहुँच गये ।

तभी कोई दौड़ा-दौड़ा आया ।

"शंभू...!" आने वाले ने कहा और उसका हाथ पकड़ लिया ।

शंभू अप्रत्याशित ढंग से आये आदमी को देखकर चौंक पड़ा ।

"कौन है भैया !" मुरली ने पूछा ।

"तुम...तुम यहाँ क्या चाहते हो अनूपा भाभी ?"

"तुमसे जरूरी काम है शम्भू...तुम्हारी जिन्दगी का सवाल है...

इधर आओ" अनूप बोली घबराये स्वर में और उसे खींचकर दूर ले जाना चाहने लगी।

शम्भू समझ नहीं सका आखिर अनूपा को उसे काम क्या पड़ गया? उसके स्वर में मुलायमियत कहाँ से भर आयी? जहर में अमृत की मीठास कहाँ से छलक पड़ी?

"जो कुछ कहना हो यहीं कहो...मुरली से घबराने की कोई बात नहीं...." शंभू सतर्क हो गया।

अनूपा हिचकिचाई।

मुरली समझ गयी, बोली—"उधर ही जाकर सुन लो न भैया। कोई जरूरी बात ही होगी..."

शंभू उठकर खड़ा हो गया। अनूपा फुस-फुसा कर जल्दी-जल्दी कुछ बोली। इधर उधर अँधेरे में देख कर शीघ्रता से अपने घर में चली गयी।

शंभू जब मुरली के पास आया। चकित-दुखित क्रोधित मुद्रा थी उसकी।

"क्या बात थी— भैया?" मुरली ने पूछा।

"कुछ नहीं...." बोला शम्भू—"एक-एक की हड्डी न तोड़ दिया तो शम्भू नाम नहीं...सामने सीना तान कर आये कोई तो शंभू का हौसला देखे। पीठ पीछे तो—"

"क्या बात है शंभू भैया! तुम्हारा हाथ काँप रहा है! किस पर गुस्से हो रहे हो, क्या मुझपर? अनूपा क्यों तुम्हें बुलाने आयी थी?" मुरली एक ही साँस में कई प्रश्न कर बैठी। जिज्ञासा मन में सर उठाकर खड़ी हो गयी थी उसके।

"अनूपा भेद की बात कहने आयी थी..."

"भेद कैसा?"

"मोह जो, तुम तो..." कहता-कहता झुँझला उठा शम्भू।

"अच्छा रहने दो, न बताना चाहते हो न ! तो न बताओ..." मुरली ने शम्भू की उँगली छोड़ दी और लाठी के सहारे चलने लगी। शम्भू समझ गया कि मुरली रूठ गयी है।

"तुमसे कोई बात छिपायी है मुरली !"

"मैं क्या जानती, तुम्हारे मन में क्या रहता है !..." खिचें स्वर में मुरली ने भी कहा।

"अच्छा ज्यादा बात मत बना, ले उँगली पकड़ ले नहीं तो ठोकर खा जायगी..."

"ठोकरें तो लगती ही रहती हैं शम्भू भैया ! क्या जानोगे मेरे दिल का हाल !" मुरली का स्वर आंसू में पग उठा था।

"जानता हूँ मुरली ! तुम्हारे मरम की पीरा समझता हूँ मैं ! अपने से अलग न समझो मुझे....तुम्हारे दिल का हाल न जानता तो तारापुर जाने के लिए तैयार न होता...तुम्हारा साथ देने से ही तो बगू मेरा दुश्मन बन बैठा है...जानती हो, कल मेरा खून करेगा वह। मुट्ठी भर गुण्डों की ताकत शम्भू को अमावस के अँधेरे में काली मौत देगी... यही तो कहने आयी थी अनूपा !"

"क्या कहते हो तुम !" शम्भू की बात सुन कर चौंक पड़ी मुरली। उसकी ज्योतिहीन आँखों में भय नाच उठा ! उसका दिल अशुभ की कल्पना से स्पन्दनहीन होने लगा।

"मैं ठीक कहता हूँ मुरली, पर..." कहते-कहते शम्भू रुक गया।

"पर क्या...साफ-साफ कहो न !"

"यही कि अनूपा ने आखिर यह बात मुझसे क्यों कह दी !"

"यही तो मैं भी सोच रही हूँ !" मुरली बोली—"वह मुँहजली भला तुम्हारा भला क्यों चाहने लगी..."

"खैर जो होगा देखा जायेगा...तुम्हारा घर आ गया—" शम्भू ठहर गया कह कर।

मुरली क्षण भर खामोश रही। फिर बोली—"शम्भू भैया, नारी जहाँ जनमती है वहाँ उसका घर नहीं होता...कल दिन में ही चले जाना। न जाने रात में परोगा क्या गजब ढाये...मेरा कलेजा धड़क रहा है शंभू भैया!...आज रात भर नींद न आयेगी मुझे तो...."

"तू घबरा मत पगली!" शंभू के अधरों पर लापरवाही की हँसी बिखर गयी—"शंभू कोई गाजर मूली नहीं...इस गाँव में कोई माई का लाल बाप का बेटा मुझे मारने के लिए पैदा नहीं हुआ है। तू फिकर न कर...बुलाऊँ क्या काकी को? काकी! ओ काकी!"

मुरली की बूढ़ी माँ खाँसती हुई हाथ में दीवट लिये, कमजोर आँखों पर जोर देकर देखती बाहर निकली—"कौन? शंभू?"

"मैं ही हूँ काकी!...लो अपनी मुरली-मुरली बजाओ..."

"हाँ रे मुये, बजेगी नहीं तो क्या...तू भी तो भोंपे की तरह बजता रहा है।"

"मुआ कहाँ हूँ काकी! अभी तो जिन्दा हूँ तभी न भोंपे की तरह बजता हूँ...मरूँगा तो भूत बनकर तुम्हारे घर पर नाचूँगा ताक-धिन ताक-धिन...अच्छा अब चला। राम-राम!" कहता हुआ शंभू जल्दी से भाग गया।

उस रात मुरली को नींद नहीं आयी। शंभू भी अपने भविष्य के बारे में सोचता रहा। कभी-कभी अनूपा के अप्रत्याशित व्यवहार के बारे में भी सोच लेता। पर हल नहीं पा सकता। हर बार एक बड़ा सा प्रश्न चिह्न उसके आगे आ खड़ा होता और उसका सोचना खतम न होता।

वह क्या जाने कि अनूपा नारी है। और नारी नरभक्षी नहीं होती। ऐसे ही जगहों पर वह पहेली बनकर रह जाती।

जाड़े की रात बरफीली होने लगी। सारा गाँव ठंडक से जमने लगा। कभी-कभी पहरेदार कुत्तों का स्वर रात के सन्नाटे से टकरा जाता तो भय की एक लहर दौड़ जाती।

अनूपा अभी तक जाग रही है बेचारी। अपने पति के विषय में सोच रही है वह। कितना नीच है—उसका पति!

दुनिया में दिल नाम की चीज बड़ी बुरी होती है। जिसके-जिसके पास बड़ा सा दिल होता है, उसके-उसके पास पहाड़ जैसा दुख भी आ जाता है। बड़ी-बड़ी अभिलाषायें जागती हैं मगर पूरी एक भी नहीं होतीं।

दिल वाला इन्सान बहुत मजबूर, बहुत बेबस होता है। ऐसे निरीह आदमी को सभी सताते हैं। लेकिन लाख चोट, हजार बाधा आने पर भी ऐसा आदमी अपनी जगह पर से हिलता नहीं। अपनी इच्छाओं को भाग्य द्वारा ठुकराये जाने पर भी उम्मीद बांधे रहता है।

मुरली की भी यही दशा थी। उसके लिये दुनिया में कोई नहीं था अब। अगर कोई था भी तो वह रामदयाल था। उसको ठुकराकर चले जाने वाला निष्ठुर पति।

वह उस निष्ठुर-निर्मोही के पास अवश्य जायेगी। उसका पैर पकड़ कर अपना जीवन मांगेगी।

रात भर मुरली सो न सकी थी। अन्धी आँखें खोले बड़े-बड़े सपने देखने में खोयी थी। रात उसे पहाड़ जैसी लगी थी।

उसके चारों ओर मोह-छाया था। माया उसे बाँधने के लिये तैयार थी। मगर वह प्रयत्न कर दूर भाग जाती थी। अपने माँ की ममता, मिट्टी के घर का मोह, गाँव की धरती का प्यार, सभी याद आता मुरली को, किन्तु उसे जबरदस्ती भुला देती। रामदयाल के आगे उसे कुछ भाता नहीं।

वह सोच नहीं पाती थी, आखिर वह रामदयाल को इतना चाहती क्यों है। मगर भोली मुरली को क्या मालूम कि दिल जिसे एक बार चाह लेता है उसे जीवन की आखिरी साँस तक चाहता रहता है। वह रामदयाल को भुला कर माँ की गोद में, मिट्टी के घर के मोह और गाँव के प्यार में अपने को छुपा लेना चाहती, पर वह ऐसा कर नहीं पाती।

अपनी बेबसी पर बेचारी आँसू बहाने लगती। आँसू उसकी पीड़ा को बहा नहीं सकते मगर। जितना रोती वह उतनी ही उसके अन्तर की पीड़ा कसकने लगती।

पौ फटते ही मुरली वादे के अनुसार तालाब पर आकर शंभू की प्रतीक्षा करने चल पड़ी। जाने के पहले उसने टटोलकर सोयी माँ का पैर छुआ। उसकी आँखों में आँसू उमड़े, स्नेह जगा, मगर ठहरी नहीं मुरली।

वह चलती-चलती तालाब पर आ बैठी। बूढ़ी माँ क्या जाने कि आज उसकी चिड़िया उड़ गयी पिंजड़ा तोड़कर।

थोड़ी ही देर में शंभू आ गया।

बोला—"क्या तू आ गयी मुरली! मैं जानता था तू आयेगी भी जरूर...खाना वाना खा तो लिया है न!"

"मुझे भूख नहीं लगती शंभू भैया!...चलो चलें!" कहकर मुरली उठ खड़ी हुई।

"ठीक है मुरली, तू ठीक कहती है। जब दिल की भूख उठती है तो पेट की भूख अपने आप खतम हो जाती है...जाते वक्त काकी से मिल तो लिया था न। वह तुम्हारी माँ है मुरली, बहुत अरमान से पाल-पोष-कर बड़ा किया है उसने...एकबार घर छोड़ने से पहले फिर सोच ले।"

"शंभू भैया! मुझे बार-बार माँ की याद मत दिलाओ...उसकी बड़ी याद आती है शम्भू भैया! भगवान के लिये मत याद दिलाओ उसकी..."

"ठीक है मुरली, नहीं दिलाऊँगा उसकी याद!...चल!' कहते-कहते शम्भू का स्वर नम्र हो गया।

मुरली ने देखा कि उसकी बात से शम्भू को चोट लग गयी है तो बोली—"शम्भू भैया! मैंने तुम्हें बड़ा दुख दिया है...मुझे क्षमा कर देना भै ।।"

"तेरा दुख मेरा दुख है मुरली! क्षमा—क्षमा माँगेगी तो ठीक न होगा—मुझे गुस्सा न दिला...चुपचाप चल!"

मुरली उठकर खड़ी हो गयी। शम्भू ने उसका हाथ पकड़ लिया। मुरली ने उसके हाथ को जोर से दबा लिया। शम्भू का हृदय हा-हाकार कर उठा। उसके आँखों में न जाने क्यों आँसू उमड़ आये।

लगता था जैसे शंभू के मन में कोई पाप है। अन्तर की पीड़ा से व्यथित शंभू सर झुकाये चल रहा था।

मुरली चुप थी, शंभू भी चुप हो था।

दोनों के पैर धूल भरी पगडंडी पर अविरामगति से चल रहे थे।

गाँव की हवा उनके पास से गुजरती, कुछ कहती मगर दोनों सुनते नहीं। पगडंडी की धूल पावों में लिपटकर उन्हें रोकती, मगर वे ठहरते नहीं।

बड़े निर्मोही बन गये थे दोनों, बड़े निष्ठुर!

गाँव का प्यार उन्हें पुकारता रह गया मगर दोनों बढ़ते गये, बढ़ते गये।

चलते-चलते शंभू ने मौनता भंग की—"थक गयी मुरली !... आओ सुस्ता लें !"

और शंभू मुरली को पास के पेड़ की छाया में ले गया ।

"तुझे भूख लगी होगी मुरली !"

"नहीं, शंभू भैया !"

"नहीं-नहीं कहकर दिल मत तोड़ मुरली...बाजरे की रोटी और गुड़ ले आया हूँ मैं !"

"किसलिये शंभू भैया !"

"खाने के लिये और किसलिये !...कैसी बातें करती है रे मुरली... खाले थोड़ा सा, भूखे पेट भजन नहीं होता । जोर से पुकार भी न सकेगी अपने भगवान को..."

"तुम पुकार कर बुला देना शंभू भैया..."

"अच्छा-अच्छा पुकार दूँगा, मगर पहले खा तो ले..."

शम्भू के प्यार भरे हठ के वशीभूत होकर मुरली ने आधी रोटी खा ली । शम्भू ने पास के कुएँ से पानी लाकर पिलाया उसे ।

दोनों थोड़ी देर तक यों ही सुस्ताते रहे, फिर चल पड़े । अपनी मंजिल की ओर ।

इन दोनों को आते-जाते लोग देखते, कुछ बोलते नहीं । अभागों से कौन बोलना चाहता है इस दुनिया में । फिर वे किसी से बोलना भी तो नहीं चाहते थे । कभी-कभी कोई परिचित मिल जाता तो शम्भू कतरा कर निकल जाने की कोशिश करता—भेद खुलने का बराबर भय लगा रहता उसे ।

जब कभी वह मुरली की बूढ़ी माँ के बारे में सोचता तो विचलित हो उठता । ममतामयी माता अपनी अन्धी-बेटी को खोज-खोज कर हार जाएगी मगर कहीं नहीं पायेगी । उसके घर भी जायेगी । छोटे से घर में बड़ा

ता-ताला लगा मिलेगा उसे। क्या सोचेगी वह—कहीं यह न सोच ले कि शम्भू मुरली को उड़ा ले गया। कितनी घृणा करने लगेगी वह नारी। जो इसका अपने से अधिक विश्वास करती है—उसकी निगाह में गिर जायेगा वह। वह उसे दगाबाज, मक्कार, बेईमान समझने लगेगी। लोग उसके कान फूँककर रहा-सहा विश्वास भी छीन लेंगे। सारा गाँव उस पर थूकेगा।

उफ्!

शम्भू को लगा जैसे कोई उसे कोस रहा हो। गालियाँ सुना रहा हो!

"मुरली!" शम्भू एक व एक बोल उठा।

"क्या है शंभू भैया। इतने जोर से क्यों बोलते हो...मैं तो तुम्हारी उँगली थामें हूँ...बोलो न....क्या आ गये हम!" मुरली बोल उठी।

"काकी तुम्हें खोजती होगी मुरली!...रो-रो कर कपार फोड़ती होगी!...मुझे गालियाँ देती होगी, दगाबाज समझती होगी...शंभू का विश्वास खो गया मुरली!"

"शम्भू भैया!" मुरली ठहर गयी। आवेश में उसने उसका हाथ पकड़ कर दबा लिया अपनी काँपती उँगलियों के बीच—"तुम घबड़ा गये शम्भू भैया इतनी जल्दी...चिता तक पहुँचाने का वादा किया है तुमने। भूल गये...तुम्हारा विश्वास कोई नहीं छीन सकता। तुम देवता हो भैया! इतनी दूर चलकर पीछे लौटने को न सोचो...तुम मर्द होकर बदनामी से डरते हो और मैं नारी होकर भी आगे बढ़ना चाहती हूँ। न जाने का इरादा हो तो...," कहते-कहते मुरली चुप हो गयी।

"बदनामी से नहीं डरता मुरली!"

"तो फिर..."

"इस बात से डरता हूँ कि कहीं रामदयाल ने तुम्हें ठुकरा दिया तो... तो क्या होगा? कौन सा मुँह लेकर गाँव लौटेंगे हम!"

"अपना ही मुँह लेकर शंभू भैया ! किसी दूसरे का नहीं ..किसी की याद भर लेकर लौटेंगे हम !" मुरली ने शंभू को उत्साहित किया।

शम्भू भी 'जो होगा देखा जायगा' सोचकर राम का नाम ले चल पड़ा। घर से निकले कदम इतनी दूर चलकर फिर वापस कैसे लौटते ! अब तो रामदयाल से मिलना ही है।

दिन ढल चला। जाड़े का दिन भी कितना छोटा होता है, ठीक मिलन की घड़ियों की भाँति। समय गुजर जाता है पर पता भी नहीं चलता।

सूरज की आखिरी किरणें तारापुर के पास वाली छोटी पहाड़ी को चूम रही थीं। हवा ठंडी हो कर बह रही थी। शम्भू ने लाल रंग की ऊनी वाली चादर मुरली के कंधे पर डाल दिया। खुद एक फटा कोट पहने था केवल।

धीरे-धीरे दोनों के पाँवों के नीचे चट्टानों के छोटे- छोटे टुकड़े आने लगे। ऐसे लगते थे वे टुकड़े जैसे किसी बड़े से पत्थर का कलेजा जमाने की चोट खाकर टूक-टूक हो गया हो। शम्भू पहाड़ी पर चढ़ने लगा। उसने नन्हीं-मुन्नी पहाड़ी को हसरत भरी निगाहों से निहारा। विचित्र तरह की दीख रही थी पहाड़ी। दूर बहुत दूर दृष्टि फेंका शम्भू ने—उसे धुआँ सा नजर आया। क्षितिज के निकट से अंधकार का तूफान उठने उठने को आतुर हो रहा था।

बड़ी सुरम्य, स्वास्थ्यप्रद जलवायु है यहाँ की। आसपास के शौकीन जमींदार, धनी-मानी लोग शाम के समय अपने घोड़े पर सवार हो कर घूमने निकल पड़ते हैं यहाँ।

शम्भू ने सामने से किसी को घोड़े पर सवार आते देखा। सवार परि-चित सा लगा उसे।

उसकी उत्सुकता बढ़ती गयी। सवार समीप आता गया।

"वही तो है।"

"कौन है शम्भू भैया।"

"जरा पास आने दे···"

जब वह सवार पास आ गया, शंभू उछल पड़ा खुशी से। उसकी आँखें सवार की आँखों से जा मिलीं।

"राम-राम छोटे ठाकुर।" शम्भू ने कहा।

घोड़ा ठहर गया। बोला—"शम्भू तुम।"

"हाँ सरकार! शम्भू ही है यह नाचीज़।...आज पहचान तो लिया आपने....अब आप कभी भूल नहीं सकते मुझे...अपने दुश्मन को कोई नहीं भूलता सरकार।"

शम्भू ने देखा—शाम के धुँधलके में उसके सरकार बगल में खड़ी अन्धी मुरली को देखने में लगे हैं।

मुरली उन्हें अच्छी लग रही थी जैसे।

सवार को लग रहा था जैसे मुरली के रूप में पूनो का चाँद उतर आया हो, उस छोटी पहाड़ी पर।

"मगर हजूर बड़े लोग हैं।" शंभू उनकी भंगिमा भी देख रहा था और कह भी रहा था—"बड़े लोगों के आगे छोटे लोगों की क्या हस्ती, कैसा झगड़ा...उस दिन बड़ा अपमान किया था आपका सरकार। गवाँर हूँ न, सो गुस्सा भी ढेर ही आता है..."

"तुम भी गड़ा मुर्दा उखाड़ने में एक ही हो शंभू।....बीती बातें ढोने से फायदा ही क्या?...अब तो हम लोगों का रास्ता अलग-अलग है।"

"हम एक ही राह पर खड़े हैं सरकार। फर्क सिर्फ इतना ही है कि आप पच्छिम से आ रहे हैं और हम पूरब से और दोनों बीच में मिल गये हैं।...अब तो या आप ही साथ चलें या हमीं आपका साथ दें...।" शंभू बोला।

"तुम्हारा मतलब समझा नहीं...."

"कोई न समझने की कोशिश करे तो इसमें मेरा दोष क्या !..."

शम्भू की बातों पर व्यक्ति ने ध्यान नहीं दिया। वह मुरली को देखने में खोया रहा। उसकी आँखों में नशा-छाता जा रहा था। इतना रूप इतना सौन्दर्य, इतना आकर्षण, उसने कभी नहीं देखा था।

अपने को धन्य समझने लगा था मुरली को देख कर।

और मुरली!

बेचारी!

वह क्या जाने कि किसी की आँखों ने उसे अपने दिल में उतार लिया। उसकी तो आँखें ही नहीं थीं, नहीं तो कुछ बोलने वाली आँखों का जवाब आँखों से ही दे देती वह—चाहे घृणा से फटकार देती अथवा प्यार से आत्म समर्पण कर पलकें झुका लेती।

पलकें तो अब भी झुकी थीं उसकी, किन्तु उनमें आत्म समर्पण का भाव लक्षित नहीं हो रहा था। उन पर चिन्ता और करुणा की छाया डोल रही थी। दमकते चेहरे पर उदासी की परत दिखाई पड़ रही थी।

"किससे बातें कर रहे हो शंभू भैया!...आवाज तो कुछ पहचानी सी लगती है..." मुरली ने कहा।

"हमारे परिचित हैं ये, तारापुर के छोटे सरकार हैं...तुम इन्हें बहुत जानती हो।"

"तारापुर के छोटे सरकार!" मुरली का कलेजा धड़कने लगा। ज्योतिहीन आँखों पर छाये परदे को हटा कर वह देखना चाहने लगी। सिर्फ पलकें भर खुलीं मगर दिखाई के नाम पर कुछ दिखाई नहीं पड़ा।

वह रामदयाल ही था। तारापुर का छोटा राजा। आज मुरली के चाँद से चेहरे में उलझ कर रह गया था—बेबस। जिस मुरली को लात-

मार कर चला आया था वह, उसी को पाने की चाह रखने लगा था। मगर उसने मुरली का चेहरा नहीं देखा था पहले।

"यह कौन है शंभू!"

"आपके चरणों की धूल है सरकार!" शंभू ने कहा।

"चरणों की धूल रूपवती नहीं होती...यह तो कोई देवी मालूम पड़ती है!" रामदयाल ने मुरली को देखते हुए कहा।

"यह देवी नहीं, पुजारिन है सरकार! आज वर्षों से अपने देवता की पूजा करते-करते थक गयी है इसकी जिन्दगी। खिला हुआ गुलाब मुरझा गया है..."

"किसने इस पर इतना जुल्म ढाया!...ऐसी नारी को किसने ठुकरा दिया! बड़ा अभागा होगा वह..." रामदयाल ने सहानुभूति के स्वर में कहा।

"नहीं!" मुरली चीख सी पड़ी।

"मुरली!" शंभू ने उसे सँभाला—"सरकार के चरण छू लो... खुश हो जायेंगे तो जीवन बन जायगा तुम्हारा!" और शंभू ने मुरली का हाथ पकड़ कर पाँवदान में झटके रामदयाल के पैर पर रख दिया।

"शम्भू!" रामदयाल कुछ रोष भरे स्वर में बोला।

"यह अभागी मुरली है सरकार! आप इसे खूब जानते होंगे।... आपके नाम की माला जप-जपकर दिन गुजारे हैं इसने...जिसे ठुकराया है आपने। वह आपके चरणों पर है। उसे उबार लो सरकार!"

"शम्भू मेरा अपमान न करो! जानते हो मेरी शादी हो गयी है...." रामदयाल कुछ कड़े स्वर में बोला।

"मुरली आपकी दासी बनकर रहेगी हजूर!"

"मेरे पास दासियों की कमी नहीं..."

"मुझ गरीब पर रहम करो देवता..." मुरली रामदयाल के पैरों पर

अपना सर रखकर रोने लगी।

रामदयाल बोला—"मैं मजबूर हूँ, मेरी दूसरी शादी हो चुकी है... तुम्हारे लिये मेरे यहाँ जगह नहीं...तुम्हारे माँ-बाप ने तुम्हारा अवगुण छिपाकर मुझे धोखा दिया था। मेरी नाक काट ली थी...छोड़ दो मेरा पैर, मुझे तुमसे कोई मतलब नहीं!"

"मुरली का इसमें क्या कसूर सरकार!...उसने तो धोखा नहीं दिया आपको!"

"दगाबाजों की सन्तान दगाबाज ही होती है..." रामदयाल बिगड़ कर बोला और मुरली के हाथों से अपने पैर छुड़ा लिये।

मुरली गिरते-गिरते बची। शम्भू ने उसे सहारा दिया।

"कीचड़ में कमल पैदा होता है सरकार! और लोग उसे कलेजे से लगा कर चूमते हैं..." शम्भू ने कहा।

"हाँ, पर तुम्हारे जैसे भौंरों से कमल की कली बचती है तभी...."

अपने ऊपर आरोप सहन नहीं कर सका शम्भू! वह भी तैश में आ गया। बोला—"रामदयाल, तुम हमसे ज्यादा नीच हो...तुम्हें मैं शरीफ आदमी समझता था। नाली के कीड़े से भी बदतर हो तुम...आज मुरली तुम्हारे पाँवों पर गिरी है, कल तुम्हें भी गिरना पड़ेगा।...आग के फेरे झूठे नहीं होते...समझ के रखना।"

"समझा है....हट जाओ सामने से!" रामदयाल गरजा।

और उसने घोड़े को एँड़ लगायी। घोड़ा आँधी बनकर दौड़ पड़ा।

उसके टापों की आवाज भर आती रही। मुरली सुनती रही। लगता था, जैसे घोड़े उसके कलेजे पर ही दौड़ रहे हों।

उसने अपना कलेजा थाम लिया।

"चलो मुरली...यही होना था!"

और दोनों चल पड़े।

पहाड़ी जन्तुओं के स्वर सजग हो उठे। रात ठंढी होती चली गयी। अँधेरा बढ़ता चला गया। आकाश में तारे, सूरज की रोशनी में बिखरे कांच के टुकड़े की भाँति चमक पड़े। आज चांद नहीं उगेगा। अमावस्या है न सो रात भर मातम मनायेगा। शायद मुरली की पीड़ा देखने के लिये उसे भी फुरसत नहीं।

शम्भू ने मुरली को सान्त्वना दी। अपनत्व पाकर मुरली खूब रोयी।

शम्भू ने मुरली का हाथ पकड़कर अन्दाज लगाया, उसे बुखार हो आया था। उसकी चिन्ता बढ़ चली। अपना कंबल उसे ओढ़ा दिया उसने। घनी रात का अँधेरा श्मशान की खामोशी लिये अट्टहास कर रहा था। शम्भू तारापुर गाँव में पहुँच गया।

तारापुर पहुँचकर असहाय शंभू और मुरली ने दीनू के यहाँ आश्रय लिया। उदार-दिलदार दीनू की गरीबी ने दोनों को अपनी झोपड़ी में छिपा लिया। पुआल का संसर्ग पाकर दोनों ने गर्मी पायी। दिल की तपन पर सान्त्वना की बूँदे पड़ीं, किन्तु आग बुझी नहीं।

मुरली असह पीड़ा की कसक से विचलित हो कर, रोती-रोती न जाने कब सो गई और...

और उस अमावस की रात में मुरली ने चाँद जैसा सपना देखा। उसने देखा कि घोड़े पर सवार रामदयाल उसे खोजता हुआ उसके पास आया है और उसे अपनी बाँहों में बाँधकर अपनी भूल के लिए क्षमा माँग रहा है।....फिर घर ले जाता है। मुरली विभोर हो उठी। उसे सब कुछ मिल गया।

सपने ने मुरली के मन में उम्मीद भर दी। राम दयाल से मिलने की अभिलाषा बढ़ती ही गयी।

और शम्भू।

उसने भी सपना देखा।

देखा कि अमावस की रात में परोरा शम्भू के साथ कुछ गुण्डों को लिये उसकी हत्या करने आया है। भयानक सपने ने उसकी नींद तोड़ दी। उठकर बैठ गया वह।

अँधेरे में टटोल कर देखा, मुरली—नींद में व्यस्त थी। उसने मुरली के माथे पर हाथ फेरा। मुरली का माथा तवे जैसा जल रहा था—। तेज बुखार था उसे।

जैसे-तैसे रात बीती, दिन जागा। सभी जागे।

दोनों अब आगे के बारे में सोचने लगे।

मुरली ने कहा—"शम्भू भैया! चलो हम उनकी पत्नी के पास चलें...मैं उसका पैर पकड़ कर अपने सोहाग की भीख माँगूगी।"

"नारी अपना सब कुछ दे सकती है मुरली...अपना सोहाग नहीं दे सकती...उसका सोहाग भी तो रामदयाल ही है—कैसी पागलपन की बात करती है तू।" शम्भू ने कहा।

"हम उससे नौकरी माँग कर वहीं रहेंगे...हम उनकी सेवा कर जीवन सुफल समझेंगे शम्भू भैया!..."

"इतनी ठोकर खाने पर भी सँभली नहीं मुरली!"

"ठोकर से घबराना नहीं चाहिए शम्भू भैया!...पता नहीं कौन सी ठोकर तकदीर जगा दे...मैंने सपना देखा है आज!"

"सपने अपने नहीं होवे मुरली!...नाउम्मीद इन्सान उम्मीद के ही सपने हमेशा देखता है..." शम्भू ने कहा—"फिर तू जैसा कह....तेरी खुशी के लिये कुछ उठा न रखूँगा!..."

दोनों हवेली चलने के लिये तैयार हुए।

दीनू ने बिना कुछ खाये-पिये मेहमानों को जाने नहीं दिया। हुक्का

न रहते

खा लिया।

फिर दोनों हवेली की ओर चल...

लोग इन्हें देखते, मुँह फेर लेते। कौन जानता था कि ऊ [illegible] की ठकुराइन लक्ष्मी उनके गाँव में भटक रही है, केवल मजदूर।

दिग्घी गाँव में आज एक ही चर्चा हो रही थी कि मुरली को शंभू भगा ले गया।
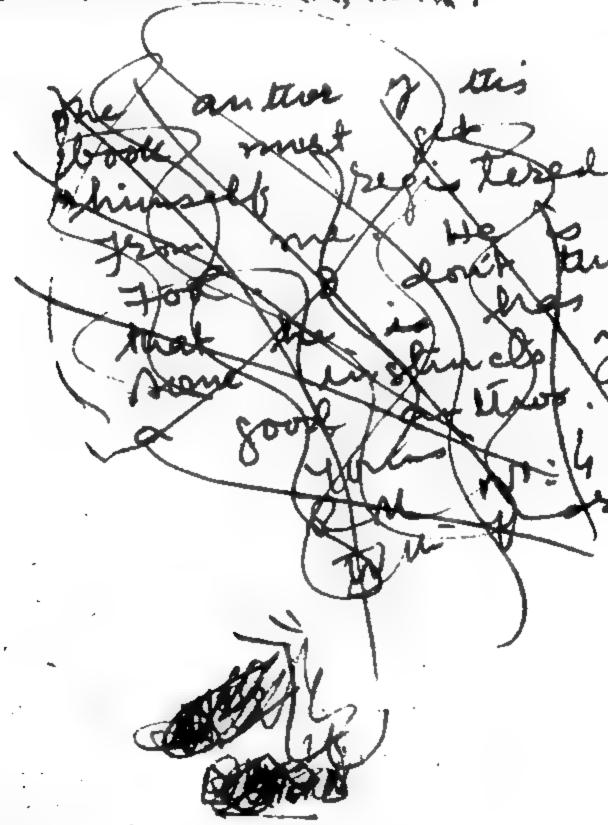
जब गाँव के सभी लोगों के कानों में यह बात पहुँची तो सभी चकित रह गये। किसी को स्वप्न में भी विश्वास नहीं था कि शम्भू जैसा आदमी ऐसा नीच कर्म कर सकता है।

गाँव की औरतें मुरली की माँ के पास आकर बैठ गयीं। प्रश्नों की बौछार होने लगी। मुरली की माँ क्या कहती! किस मुँह से कहती! उसका तो संसार ही लुट गया था। वह भी तो शंभू को अपनी निगाहों में नीच समझने लगी थी। कोई भी माँ ऐसा ही समझती।

मुरली की माँ कितनी निरीह नारी है। दुख भी मिलने लगे उसे तो जीवन की गोधूली में। एक दिन उसकी बछिया खुल गयी थी तो पागल होकर जमीन-आसमान एक कर दिया था उसने। आज तो उसकी बेटी खो गयी थी। उसकी बूढ़ी आँखों की रोशनी, कलेजे का टुकड़ा।

लोगों की व्यंगोक्तियाँ तीर की तरह छुटतीं और सीधे कलेजे पर बरछी जैसा घाव कर जातीं। बुढ़िया बेचारी उफ़् भी नहीं करती। तकदीर के आँसू भी नहीं दिखा पाती किसी को।

वह जड़वत्, स्पन्दनहीन, एक कोने में मुँह छिपाये रो रही थी।

उसके आस-पास सान्त्वना के नाम पर उलहना देने वाली नारियाँ बैठी थीं।

"बप्पा रे, देखने में कितनी भोली लगती थी मुरली, जैसे बछिया! आँख होती तो न जाने कौन-सा जुल्म ढाती!" एक ने कहा।

"अरे बहिनी, तब तो गाँव के छोरों को आगे-पीछे लेकर धूम मचाती...छिः-छिः, ऐसा करम तो गाँव में अब तक नहीं हुआ था..."

तभी—

औरतों की भीड़ में हर्ष की लहर दौड़ गयी। जैसे भक्तों के बीच भगवान आ गये हों।

सचमुच में ही एक सफेद-काले के मिलावट्दार बाल लिये, चेहरे पर ज़माने की झुर्रियाँ लादे, मुँह के दाँत बड़े-बड़े पर चौड़े-चौड़े खुरपे की तरह। दाँतों में से कुछ एक टूटे, मोटे होंठ, भारी आवाज़, स्थूल काया, गंभीर चाल वाली नारी आयी।

सब ने—"मनतोरा मौसी राम-राम!" कहकर अपने बीच आदर से बिठाया।

सभी लोग उसे अपना सरदार मानती थीं। मौसी पसर कर उनके बीच बैठ गयी।

बोली—"क्या बात है रे लखिया! काहे की भीड़ जमी है!... सब जने ऐसे उमड़ पड़ी हो जैसे बरसाती नदी...कोई मेला लगा है का!"

"अरी मौसी सुना नहीं तुमने...खूँटा तुड़ाकर बैल भाग गया

और...” गोरी, छरहरी युवती स्वर में थोड़ा व्यंग भरकर बोली—और कहते-कहते बीच ही में रुक गयी।

“और क्या रे! मुई बोलती भी है तो आधा पेट में ही रख लेती है...”

“और साथ में चार हाथ का पगहा भी लेता गया मुआ!” हाथ मटका कर, आँखें नचाकर पास खड़ी युवती बोली।

“अरे बहिनी रे बहिनी! देखो तो इस छोरी की चाल...नाटक दिखाती है मुई!” मनतोरा मौसी बोली—“क्यों री, चमक चम्पो! ढेर नखरा सीख गया है क्या तू? चल तेरे बाप से कहूँ! तू भी कम नहीं है किसी से!”

“कम क्यों होऊँ मौसी? किसी के पैर को धूल हूँ क्या?...”

“पैर की धूल काहे को बनेगी माई! तू तो विक्रमाजीत राजा के माथे का ताज बनेगी ताज...सोने से मढ़कर रखेगा मुआ!...” मौसी बोली—“अरे कहाँ हो मुरली की माँ!...लो उधर कोने में रो रही है...का बहिन तुम भी क्या हाल बना रखो हो...तुम्हारे भाग में यही लिखा था तो करोगी क्या?...अच्छे लोग भी कालिख पोतने लगे हैं आज के जमाने में और वह भी ठीक मुँह पर...और वह कलुआ शम्भू! हरामी देखने में कैसा काला भुजंग भूत जैसा लगता था...सामने आता तो मौसी-मौसी कहकर पैर पकड़ने दौड़ता था करैत! दाँत निपोरना खूब जानता था कलमुँहा! जानती कि इतना विष भरा है उसके दाँतों में, तो तोड़कर मुँह पोपला कर देती...बेईमान!”

“राम-राम मौसी!” मर्दानी और जनानी मुँह से सम्मिलत स्वर निकला!

मौसी ने आँखें उठाकर देखा—

बग्गू लोहार और अनूपा थे...

"आओ बग्गू क्या हाल चाल है....कैसे आये ?"

"लो आ गया मौसी। क्या पूछा तुमने—हाल-चाल...हाल तो बिल्कुल ठीक नहीं है मौसी—और चाल तो जमाने की खराब हो गयी है। अपन भी तो जमाने से बाहर नहीं...भगवान कसम मौसी, दुनिया बड़ी दगाबाज हो गयी है, जिसे दिल दो, वही पटक कर मिट्टी के घड़े की तरह फोड़ देगा...किसी से किसी की सच बात भी कहो तो लोग समझने लगते हैं—बस इसी दाल और दिल दोनों में काला है, तभी बुराई हाँक रहा है। भाई अपने को क्या, मुँह है साफ बात कह देता हूँ ?"

"और लोगों का मुलायम कलेजा है सो तीर सा चुभ जाती है सच्ची बात—क्यों जी ?" अनूपा बोल उठी।

"हाँ जी हाँ ! तुम भी एक ही हो मुलायम कलेजा परखने में ..." बग्गू ने मजाक करते हुए कहा।

"चुप रहो जी..." आँखों में गुस्सा भरकर ताका अनूपा ने तो बग्गू सिटपिटा गया।

"बिगड़ो मत भाई, चुप ही रहता हूँ।" बग्गू विनती के स्वर में बोला—"हाँ तो मौसी तुमने पूछा—कि कैसे आये...आया तो हूँ पैदल ही। वैसे यह भी कह दूँ कि जैसे तुम आयी हो वैसे हम भी आये हैं..."

"अच्छा, चुप रह...कल का छोरा मुँह लगता है" मौसी बिगड़ पड़ी।

"लो, बिगड़ पड़ीं न कुछ ! सच बात बुरी लग जाती है...भई, आज के जमाने में सच बोलना भी गुनाह है। चुप ही रहना ठीक है..." कहकर बग्गू चुप हो गया।

"देखो दाढ़ीजार को, कुछ कहा हमने ? अरे मुए, तुझको सीधी बात का सीधा जवाब नहीं देना आता है क्या ? हाथ घुमाकर कान क्यों पकड़ता है ?...कहता, काकी के दुख में हाथ बटाने चला आया ?...."

"तुम तो खुद ही समझदार हो मौसी....।" बग्गू बोल उठा—और

बनावटी दुख दिखाता हुआ बोला—"काकी का दुख तो पहाड़ जैसा है। कौन हाथ बटा सकता है ? शम्भू ने तो काकी का घर उजाड़ दिया...भगवान कसम, मौसी शम्भुआ पूरा हरामी था...एक दिन तो झगड़ा होते-होते बचा...भाग गया नहीं तो बेटा को ऐसा मजा चखाता कि ज़िन्दगी भर याद करते...अपने को गामा का बाप ही समझता था..."

"बड़ा बेइमान था वह काकी ! मुआ एक दिन आया और भाभी-भाभी कहकर हाथ पकड़ लिया।" अनूपा ने भी कहा—"मेरा तो जी जल गया...फिर वो जूतियाँ मारी कि....बस फिर मेरे मुँह लगना ही छोड़ दिया उसने...मुरली का हाथ पकड़ कर तालाब पर पहुँच जाता और मीठी-मीठी बातें बनाकर उसे लुभाता। वेचारी अन्धी क्या जाने यह छल। आ गई हाथ में...मैं तो पहले ही कहती थी..."

"मगर काकी और काका ने हमी को दुश्मन माना...तो क्या करता ! मुरली पर पहले से ही उसकी नजर खराब हो चुकी थी, तभी तो सजीवनलाल का कान फूँक कर सारा गुड़ गोबर कर दिया...नहीं तो कितने सुख में रहती मुरली ! पूरा साँप था शम्भू काकी ! अब न जाने मुरली के साथ क्या करेगा ?"

"करेगा क्या...मेहरी बना कर रखेगा, फिर दूध की मक्खी बना कर फेंक देगा...उसका क्या विश्वास" अनूपा ने कहा।

"तू ठीक कहती है रे अनूपा ! मरद तो भौंरे होते हैं भौंरे !" मौसी ने कहा।

ये लोग इधर बातें करने में तल्लीन थे। उधर मुरली की बूढ़ी माँ पर पहाड़ भहरा रहा था। दुख के आवेग में व्यंगों के तीर कितने घातक कितने तीखे लगते हैं। यह कोई बेचारी बूढ़ी माँ से पूछे—

वहाँ पर बैठने वाली कुमारियाँ कोई दूध की धोयी नहीं, फिर भी

उनका दोष तो छिपा था, उनके आँचल में। तो कौन उस पर उँगली उठाने का साहस करता।

मगर मुरली तो निर्दोष थी बेचारी तो किसी से कौन सा दोष छिपाती वह। आज की दुनिया तो इतनी खराब हो गयी है कि निर्दोष को दोषी बनाकर फांसी पर चढ़ा देती है। दोषी को पकड़ने के लिये उसके पास कोई तरीका नहीं।

कल की मुरली और शंभू आज लोगों की निगाहों में इस तरह गिर गये थे जैसे आसमान से तारा टूटकर गिरता है।

दोनों की कितनी चर्चा हो रही थी आज।

बहुत लोग तो झूठ-मूठ की बात गढ़कर भी कह रहे थे। अपनी बात ऊपर रखने के लिये, अपनी जानकारी एवं ज्ञान दिखाने के लिये।

अशिक्षित और मूर्ख लोगों की बात तो और है। आज के पढ़े लिखे सभ्य भी यही करते हैं। वैसे यह मानव प्रकृति ही है। यह बात अधिकतर नारियों में ही पायी जाती है। नारियाँ तिल का ताड़ बनाने में खूब सिद्धहस्त होती हैं। तभी तो वे देवी होते हुए भी हेय हैं।

"सच मौसी! मैंने तो काकी को एक दिन शाम को तालाब पर दिखा भी दिया मगर शम्भू तो देवता बना था इनकी आँखों में—सो पचास गालियाँ अपने मत्थे ही पड़ गयीं...अभी भी काकी मुझ पर अविश्वास करती है..."

"जले पर नमक मत छिड़को बेटा!...मेरा तो भाग फूटा था जो तुम्हें बुरा भला कह बैठी...मुझ बूढ़ी को क्षमा कर दे..." पीड़ा की मार से मुरली की माँ का स्वर काँप-काँप कर निकल रहा था।

"इसमें क्षमा माँगने की बात ही क्या है काकी!...राम-राम, जीते जी नरक भेजोगी क्या। बड़े-बूढ़ों की बात मन मैं इतना बुरी नहीं मानता...तुम्हारी गालियाँ तो हमारे लिये वरदान हैं आशीर्वाद हैं...

भला, मैं बुरा क्यों मानूँगा...तुम लोगों की भलाई के लिये ही मैं कुछ कहता था !...बदमाश शम्भू ने काका का दिमाग फेर दिया तो काका लाठी लेकर लड़ने चले आये थे...मैंने तो कह दिया था—मेरा गला भी काट लो काका, मगर जग्गू तुम्हारी शान में गुस्ताखी नहीं करेगा... मानो न मानो काकी मेरा दर तो तुम्हारा दुख देख कर चाक की तरह चक्कर काट रहा है !...घबराओ मत, मुरली की खोज करूँगा मैं...और शम्भू ! बचा का गला न तराश लिया तो मेरा नाम जग्गू नहीं !" कहने के बाद जग्गू ने अपनी छोटी-छोटी मूँछों पर शान से हाथ फेरा।

"तुम्हारा ही तो आसरा है बेटा ! और अब है ही कौन मेरा !" बुढ़िया जग्गू का अपनत्व पाकर उमड़ पड़ी। उसकी बूढ़ी पलकों से जवान आँसू की बूँदें ढुलकने लगीं।

आज उस विधवा नारी के कलेजे के भीतर कैसा भयानक तूफान उठ रहा था—इसे कोई क्या जाने। उसने सर पटक-पटक कर मुरली को पुकारा मगर वह नहीं आयी। उसके सर में कई जगह गुमटे उभर आये थे। कमजोर आँखों में मौत का अँधेरा घर करता जा रहा था।

"सुनती हो !" जग्गू ने जरा जोर से पुकारा।

"बोलो न ! यहीं तो हूँ...इतना चिल्लाते क्यों हो !" अनूपा ने कहा।

"काकी हमारे घर चलेगी...अकेले मन घबरायेगा न यहाँ। और सर पटक-पटक कर जान भी दे देगी !...सहारा देकर उठाओ, ले चलो।" जग्गू ने अपनत्व प्रदर्शित किया और अधिकार पूर्ण स्वर में आज्ञा दी।

अनूपा क्षण भर के लिये किंकर्तव्यविमूढ़ होकर उसकी ओर देखती रही, फिर जग्गू की छोटी-छोटी आँखों का इशारा पाकर मुरली की माँ के पास दौड़ कर पहुँच गयी।

"मैं ठीक तो कर रहा हूँ न मौसी !" जग्गू ने मनतोरा मौसी की ओर मुखातिब होकर पूछा।

"ठीक ही है बेटा! दुख में तू साथ देगा तो लोग तेरा नाम राम की तरह जपेंगे...बड़ा पुन्न मिलेगा तुझे। तू तो भगवान बन गया रे बग्गू!" मन तोरा मौसी ने कहा।

"भगवान क्या बनूँगा मौसी! सिर्फ तुम लोगों का आशीर्वाद मिलता रहे—बस! बग्गू लोहार का दिल कभी खाली नहीं रहेगा।"

आस-पास खड़ी औरतें धीरे-धीरे जाने लगी थीं। बग्गू को सहारा देते देख किसी को मजाक उड़ाने का साहस नहीं हुआ।

मनतोरा मौसी भी अपनी भारी भरकम काया ले कर खड़ी हो गयी।

"जा रही हो मौसी!" बग्गू ने पूछा।

"हाँ बेटा!" मौसी ने कहा—"बहिन को कोई दुख मत देना।"

"क्या कहती हो मौसी।" स्वर में जरूरत से अधिक करुणा भरकर बोला बग्गू—"भगवान कसम! काकी को खिलाकर हम दोनों प्राणी मुँह में अन्न रखेंगे....चलो जी चलो। मुझे माँ मिल गयी और तुझे सास।"

"काकी तो तैयार ही नहीं है चलने के लिये और तुम माँ और सास बनाये जा रहे हो...काकी भला हम लोगों को क्यों अपनायेगी। हम लोगों पर नाराज हैं न।" अनूपा ने दुखी होकर कहा।

"ऐसा न कहो बहू! मैं तुम पर क्यों नाराज रहूँगी। तुम लोग तो देवता हो, जो मेरे दुख में हाथ बटाने आये....पर छोड़ने का जी नहीं चाहता। बड़ा मोह लगता है। उन्होंने अपने हाथ से बनाया था इसे। यहीं प्राण निकल जाय तो मेरी आत्मा को शान्ति मिले।... कुछ दूसरा न सोचना।"

सुना बग्गू ने तो चिन्तित हो उठा। दौड़कर उसने मुरली की माँ का पैर पकड़ लिया। बोला—"काकी! तुम्हारे पैर पड़ता हूँ। भगवान के लिये चलो चलो। बग्गू की झोपड़ी में कोई दुख नहीं मिलेगा। जानता

हूँ, यहाँ अकेली घबड़ा कर मर जाओगी तुम। दुख के समय दो आदमी के बीच में मन बहल जाता है...भगवान कसम! हम तुम्हारा पैर नहीं छोड़ सकते, जब तक चलोगी नहीं। काकी! मुझे भी बेटा बना लो। हम मुरली की खोज में जमीन-आसमान एक कर देंगे...समझाओ न मौसी! तुम ऐसी खड़ी हो जैसे तुम्हें लकवा मार गया हो..."

"लकवा मारे तेरी नानी को मुए!" मनतोरा मौसी बिगड़ पड़ी।

"मेरी नानी को इतनी जोर से नहीं पुकारो मौसी! नहीं तो दौड़ी चली आयेगी...."

"ठट्ठा करता है रे छोरे!" मौसी मुरली की माँ के पास ही आकर लद से बैठ गयी।

"ठट्ठा करने वाला कुत्ता मौसी! गलती माफ करो...जरा काकी को समझाओ न, ऐसी हालत बनाये रहेगी तो भगवान कसम, मुझे नींद नहीं आयेगी रातभर। खाना भी नहीं पचेगा..." जग्गू दुख पूर्ण स्वर में बोला।

"जाओ न बहिन! जो हुआ सो हुआ। जग्गू मुरली को खोज देगा।...तब तक दोनों प्राणियों को ही अपनी सन्तान मानो।"

बहुत समझाने-बुझाने पर मुरली की माँ जग्गू के घर जाने के लिये तैयार हुई।

जग्गू की चाल चल गयी। उसके उदारता पूर्ण व्यवहार को किसी ने सराहा, किसी ने बुरा कहा। मगर जग्गू को किसी से मतलब क्या। वह जो चाहता था, सो हो गया। अब तो घर-जमीन सभी उसके हाथ आ जायगा!

अनूपा और जग्गू ने उस रात मुरली की माँ की खूब सेवा की। मुरली की माँ! बेचारी भोली वृद्धा नारी! वह क्या समझे जग्गू की चाल। वह उनके स्नेहमय व्यवहार से अपना दुख भुला बैठी! दुख भुला तो बैठी मगर मुरली की याद न भुला सकी! कभी-कभी उसके बूढ़े

दिमाग में असह वेदना भर जाती, आंखों के कोरों में आंसू का सागर लहरा जाता तो छाती की ठठरी के भीतर धड़कते हृदय में कसक पैदा हो जाती। और उसे ऐसी कमी महसूस होती कि उसका बूढ़ा शरीर पीड़ा की मार से, रेत पर पड़ी मछली की भाँति तड़पने लगता।

ऐसे समय में अनूपा और जग्गू अपनी झूठी हमदर्दी देकर उसे सान्त्वना देते। बेचारी बुढ़िया उनकी मीठी-मीठी बातों के पीछे छिपे जहर को देख नहीं पाती।

कभी मुरली का नाम लेकर खूब रोती और शंभू का नाम लेकर खूब गालियाँ बकती।

जग्गू और अनूपा भी शंभू की शिकायत करने में गुञ्जाइश नहीं करते। जिसे सुनकर मुरली की माँ का मन शंभू की ओर से खिचता ही जाता।

दूसरे दिन—

जग्गू अपने काम में व्यस्त था। अनूपा भी वहीं थी। मुरली की माँ अपने घर चली गयी थी। दिन के समय वह वहीं चली जाती थी। जिस घर में उसने जवानी के सपने देखे, जिसमें उसके भाग्य बने और बिगड़े, जिस घर में वह हँसी-रोयी। उसे भला कैसे त्याग देती वह। जब वहाँ गयी वह, सुनसान घर में उसे किसी की सिसकी सुनाई पड़ी जैसे। उसे लगा, कहीं मुरली वापस तो नहीं आ गयी। उसने व्यग्र होकर, अपनी बूढ़ी आँखों की कमजोर रोशनी को बटोर कर खोजा। मगर मुरली कहाँ थी।

सन्नाटे का दामन थाम कर खूब रोयी बेचारी बुढ़िया।

इधर जग्गू और अनूपा उसका गला काटने के तरीके खोजने में व्यस्त थे।

"अच्छा हुआ जो मुरली को लेकर शम्भू भाग गया। अब किसी का डर नहीं मुझे..."

"शम्भू से बहुत डर लगता था तुम्हें...डींग तो बहुत हाँकते थे। आज पता चला कि तुम कितने बड़े गीदी हो...उस दिन तो उसको मारने की साजिश कर रहे थे तुम!" अनूपा ने कहा।

"यह तुम्हें कैसे मालूम हुआ?" जग्गू अपने भेद की बात अनूपा के मुँह से सुनकर चौंक पड़ा।

"क्यों क्या मैं बन में रहती हूँ क्या? बात कर रहे थे तो सुनाई पड़ गयी मुझे...इसमें मेरा क्या दोष!" अनूपा ने कहा।

"तुम्हारे कान और जबान दोनों तेज हैं...हम लोग तो जोर-जोर से बोल भी नहीं रहे थे। खैर, सुन लिया तो कोई बात नहीं...मगर मालूम नहीं, शम्भू भाग क्यों गया। लगता है उसको बात मालूम हो गयी थी। कौन कह सकता है उसे?" कहकर जग्गू ने अपनी छोटी-छोटी कौड़ी जैसी आँखें सिकोड़ी और अनूपा की ओर देखा।

"तुम्हारा किस पर शक है?"

"तुमने तो नहीं कहा—सच बताना!"

"ऐसे क्यों कहते हो? साफ-साफ कह डालो न कि तुमने ही कहा होगा..." अनूपा कुछ क्रोध पूर्ण स्वर में बोली—"क्यों न कहती। उसे मारकर तुम बचते? सीधे शूली पर लटका दिये जाते..."

"लो तुम तो नाराज हो गयी...इसमें नाराज होने की क्या बात है!" जग्गू ने मुलायमियत से कहा।

"तुम्हारे जैसा आदमी खून कर सकता है, मैंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था...जीते जी मार डालने का इरादा है क्या मुझे—तुम्हें फाँसी हो जाती तो विधवा बनकर किसके सहारे जीती। बेटे भी तो नहीं कि सहारा दे सकें। चार-चार हुए—सभी तुम्हारे पाप के कारण मर गये...मैंने शम्भू से सारी बात कह दी....कह तो दिया! जो करना हो कर लो...जाओ!" और अनूपा भुनभुनाती, आवेश में उठकर घर के भीतर चली गयी।

जग्गू भी क्रोध में आ गया था। उसे गुस्सा आ गया इस बात पर कि उसकी पत्नी ने क्यों कह दिया शंभू से। अगर शम्भू उससे बदला ले लेता तो।

"बात ठीक कहता हूँ तो जहर जैसा लगता है...शम्भू मुझे मार डालता तो कलेजा ठंढा होता तुम्हारा? मेरा मरा मुँह ही देखना चाहती थी न!" जग्गू ने बिगड़कर कहा।

"चुप रहो जी, शम्भू तुम्हारे जैसा नीच नहीं...उसका दिल बहुत बड़ा है, खूब जानती हूँ मैं।"

"जानोगी क्यों नहीं, उसी के दिल में रहती हो न! बेईमान कहीं का!"

"लो, जाकर कुएँ में कूद जाती हूँ। तुम्हारी जान को निजात मिल जायेगी..." कहकर अनूपा दौड़ कर बाहर जाने लगी।

"जीतोगी नहीं तो जान देने की सूझेगी तुम्हें...चुपचाप बैठो!" कहकर जग्गू ने उसका हाथ पकड़ लिया और झटके से खींचा। अनूपा धद से जमीन पर गिर पड़ी और बैठकर रोने लगी।

उसी समय—

गाँव के किसी बालक के साथ मुरली की माँ लौट आयी। उसे देखकर दोनों प्राणी ठिठक गये।

"आ गयी काकी! बड़ी देर लगायी तुमने...सुनती हो, रोओ मत, काकी आ गयी अब तो!" जग्गू ने अनूपा को सम्बोधित कर कहा।

"क्या बात है जग्गू बेटा!" मुरली की माँ ने पूछा।

"कुछ नहीं काकी, इसे तो बात-बात में रोना आता है...तुम चली गयी थी न तो घबरा उठी यह। कहने लगी, क्यों चले जाने दिया काकी को। मैं साथ नहीं जा सकती थी...इसे डर लगता है, तुम कहीं दुख में जाकर अपनी जान न दे डालो..."

"चुप रहो बहू ! तुम गाँव गयी थीं तो सोचा, जरा घूम आऊँ...जरा दिल बहल गया।" मुरली की माँ ने कहा।

जग्गू की झूठी बात पर अनूरा को क्रोध तो आया, किन्तु मन ही मन जल कर रह गयी।

तभी जग्गू ने अपनी जेब में से एक कागज निकाला। बोला—"काकी, थाने में रपट लिखा दिया है मैंने। पुलिस मुरली को खोजेगी...फिर देखना मजा....बेइमान शम्भू की मरम्मत न हो जाय तो फिर कहना..."

"तुमने अच्छा नहीं किया जग्गू ! सिपाही बड़े बदमाश होते हैं...एक बार गोरी पलटन आयी थी तो मुरली के बाबू और गाँव की लड़कियों के साथ बड़ा अन्याय हुआ था...कहीं मुरली के साथ भी..."

"वो जमाना गया काकी, क्या कहती हो तुम...बेकार की चिन्ता न करो...जरा इस पर अँगूठा तो लगा दो !" कह कर जग्गू ने मुरली की माँ का अँगूठा थाम लिया, उसमें कालिख लगा कर कागज के एक कोने में दाग दिया।

मुरली की माँ कुछ विचार भी न पायी।

"यह किस लिये..."

"बता दूँ काकी, जानती हो न तुम्हें कोई नहीं है। और तुम्हारे घर-बार की देख-रेख होना तो जरूरी ही है। नहीं तो चोर लुटेरे न जाने कब तुम्हें कमजोर जानकर धावा बोल दें...मैंने उसी की रक्षा के लिये अपना नाम लिखा लिया है। जब तक तुम राजी नहीं होती तो मैं देखभाल करता कैसे ?...सरकारी काम है न ! तुम निश्चिन्त रहो... देखो काकी को खाना-वाना खिलाओ।" जग्गू के चेहरे पर हँसी की रेखा खिंच गयी।

उसकी हँसी कितनी क्रूर थी इसे मुरली की भोली माँ क्या समझे। समझी तो सिर्फ अनूरा। अनूरा के मन में अपने पति के लिए घृणा घर कर गयी।

बाहर आकर उसने बग्गू से कुछ कहा भी तो वह बोला—"यह सब तुम क्या जानो...दुनियादारी के मामले में कुछ जानती भी हो ? मुफ्त का किसी को कौन खिलाता है। कोई खजाना गड़ा है क्या हमारे पास..."

और धीरे-धीरे दिन खिसकने लगे। मुरली की झूठ-मूठ खोज होती रही। निरीह बुढ़िया अपनी पलकों में मौत की इन्तजारी के साथ मुरली के आने की आशा भी बाँधे रही। बग्गू और अनूपा अब अधिक खयाल उसका नहीं रखने लगे।

आखिर एक दिन ऐसा भी आया। जो अनूपा सास मानकर उसकी पूजा करती थी, बोली—"काकी, इस तरह कब तक मुरली के नाम की माला जपती रहोगी....वह तो चिड़िया थी, उड़ गयी। माला मार कर बैठने से काम नहीं चलने का...कुछ काम भी किया करो। हमारे पास भगवान ने खजाना नहीं भेजा है कि तुम्हें उम्र भर बैठा कर खिलाती रहूँ..."

"हाँ काकी, बैठने से काम नहीं चलेगा।" बग्गू ने भी कहा।

मुरली की माँ दुख और अपमान पाकर पागल-सी हो उठी और वह उठ कर अपने जीर्ण-शीर्ण खपरैल के मकान में आ रही।

लोग कुछ कहते तो बग्गू कहता—"वह तो अपने मन से चली गयी...भई मैं क्या करूँ ?"

बुढ़िया रो-रोकर अपने दिन गुजारने लगी।

बग्गू उसकी अर्थी देखने की प्रतीक्षा में लगा रहा।

अन्धों को आँखें नहीं होतीं मगर दिल तो होता ही है। और उस दिल पर जब असहनीय चोट आ बैठती है तब इन्सान घबड़ा जाता है।

मुरली की भी यही दशा थी। हर पग पर मिलने वाली निराशा ने उसके भावुक दिमाग को ठिकाने नहीं रहने दिया था। वह पागल जैसी हो गयी थी। उस अन्धी के जीवन में क्या, एक क्षण के लिये भी सुख का पौधा नहीं उगेगा? कितनी बेबस हो गयी है वह।

बहुत अरमान लेकर बेचारी हवेली गयी थी शम्भू के साथ। अपनी सौत से मिली थी वह, देवी मानकर। उसने गिड़गिड़ा कर कहा था—"सरकार! हम आपकी सेवा करना चाहते हैं...अन्धों को सहारा देकर पुण्य लूटिये।" मगर वह भी पसीजी नहीं, सहानुभूति के कुछ शब्द भी नहीं कहा उस निर्मम नारी ने। उल्टे दुत्कार दिया।

शम्भू का जी तो जल गया था सुनकर, मगर कुछ बोला नहीं था। किस अधिकार से बोलता वह?

दुखी हृदय लेकर दोनों हवेली से बाहर निकले। मुरली ने वहाँ की धरती पर संभल-संभल कर पैर रखा। वहाँ के एक-एक कंकड़ के लिये उसके मन में श्रद्धा थी। वहाँ की धूल उसके माँग का सिन्दूर थी। अगर आँखें होतीं उसके पास तो वही वहाँ की रानी होती।

मगर हायरी तकदीर !

मुरली के लिये दुनिया के सभी रास्ते जैसे बन्द हो गये थे। वह जीवन और मृत्यु के बीच त्रिशंकु की भाँति लटक गयी थी। आशा की एक भी किरण उसे दिखायी नहीं पड़ती थी मगर न जाने कौन उसके मन में छिपकर उसे जीवन के निराशामयी रात्रि से ज्योति के आँगन की ओर संकेत कर रहा था।

दोनों तारापुर गाँव से निकले तो कोई राह निश्चित कर नहीं सके। अनिश्चित लक्ष्य की ओर बेमन-बेमन बढ़ते गये। उन्हें भूख भी नहीं थी और न प्यास ही और न जीने की लालसा ही बाकी रह गयी थी।

"अब कहाँ जाओगी मुरली !...मैं तो पहले ही कह रहा था... सच मानो, इस दुनिया में इन्सानियत नहीं रह गयी अब। भगवान कसम, एक-एक की जान ले लेने की इच्छा होती है।" शम्भू ने कहा।

"शम्भू भैया ! तुम मुझसे राह पूछते हो ? मैं तो अन्धी हूँ।" मुरली ने कहा—"अगर खुद राह खोजना जानती तो तुम्हारी उँगली थामकर तारापुर आने की नौबत नहीं आती—डोली पर बैठकर आती।"

मुरली के चेहरे पर करुणा के चिह्न उभर आये थे। आँखों में महाशून्य व्याप्त था।

"मैं भी कितना पागल हूँ मुरली ! बार-बार तुम्हीं से पूछता हूँ... पर क्या करूँ !...ऐसा कर, चल अपने गाँव चले चलें। इस तरह कहाँ भटक कर जायेंगे हम ?" शम्भू ने कहा।

"गाँव जाने पर क्या मिलेगा शम्भू भैया ?"

"सुख मिलेगा मुरली ! वहाँ की मिट्टी में इतने बड़े हुए हैं हम। वहाँ का पानी पीकर प्यास बुझायी है हमने। वहीं हमारा बचपन बीता है। वहीं जवानी भी मिली और यह बुरा दिन भी..." शम्भू ने निश्वाँस लेकर कहा—"दुख के दिन हमेशा नहीं रहते मुरली ! सुख-दुख तो रात दिन की तरह हैं, कभी तो सुख का सवेरा आयेगा ही।"

"शम्भू भैया ! मुरली के जीवन में सुख का सवेरा नहीं आयेगा अब। उसे तो जिन्दगी भर जलना होगा।" मुरली के अधरों पर एक फीकी हँसी खेल गयी।

शंभू ने आज मुद्दत के बाद उसे हँसते देखा था। आँखों में स्नेह भर कर मुरली को देखता रह गया वह।

"मुरली ! तू ऐसे ही हँसा कर मुरली ! मुझे बड़ी अच्छी लगती है तेरी हँसी।" शम्भू का स्वर विभोर था।

"पतझड़ सी हँसी तुम्हें पसन्द आती है शम्भू भैया !" मुरली ने उसी प्रकार हँसते हुए कहा।

"हाँ मुरली !" कहा शम्भू ने—"कभी-कभी आँसू में भी सुख देने की शक्ति आ जाती है। जो दुख में भी हँसता है वही तो सच्चा आदमी है मुरली ! यूँ ही हँसती रही तू तो किसी दिन तेरी पीड़ा भी मुस्कुरा उठेगी। किस्मत भी हँस पड़ेगी।"

"तो मैं हँसूगी भैया ! भले किस्मत मेरी हँसी पर न रीझे मगर तुम्हें तो अच्छा लगेगी न—मैं तुम्हारे लिये हँसूगी। इस अभागिन के लिये तुमने भी खूब दुख उठाया।....अपने जीवन में तुम्हें भूल न सकूँगी।" कहते-कहते मुरली रो पड़ी। उसके अन्तर की पीड़ा आँखों से आँसू बनकर ढुलक पड़ी।

"देख मुरली ! यह बुरी बात है।" कहते-कहते शम्भू भी द्रवित हो उठा। वह भी रो पड़ा।

पीड़ा को पीड़ा ने वर लिया। आँसू ने आँसू की कहानी सुनी।

आज शम्भू जैसा आदमी भी पिघल कर दरिया बन गया था। शम्भू ने आँखों के बहते आँसुओं को रोका नहीं। उसने उन्हें बहने दिया, बहने दिया। अपने अधर को उसने दाँतों के नीचे भींच लिया।

"मुरली, भगवान के लिये मत रो।"

"भगवान का नाम मत लो शम्भू भैया! वह हम गरीबों के लिये सो गया है।" हिचकी भरती हुई बोली मुरली।"

और शम्भू ने मुरली को अपनी छाती से चिपका लिया। स्नेह से उसके माथे पर हाथ फेरा। मुरली अगाध स्नेह, अपार अपनत्व पाकर पिघल पड़ी। शम्भू की छाती पर मस्तक रखकर खूब रोई, बिलख-बिलख कर, एक मासूम बच्चे की भाँति।

"अब चुप रह मेरी पगली बहन!" शम्भू ने उसके आँसू को पोछते हुए कहा—"रोती-रोती थक जायगी, मगर ये दगाबाज आँसू कम होने के नाम नहीं लेंगे।"

कुछ देर बाद मुरली चुप हो गयी। शम्भू भी ठंढी साँस लेकर रह गया।

"शंभू भैया! तुम भी रोते हो!"

"रोता नहीं था मुरली, तुमने रुला दिया....अब रोयेगी तो ठीक नहीं होगा—समझे रहना। सर पटक दूँगा—हाँ।" शंभू ने कहा।

"एक बात पूछूँ!"

"पूछ!"

"कहते हो न कि गाँव में सब सुख मिल जायगा हमें?" मुरली ने, गंभीर होकर पूछा—"क्या हमारा बचपन भी मिल जायगा? शम्भू भैया बचपन मुझे बड़ा अच्छा लगता था, जवानी में बड़ी कसक है।"

"पागलपन की बात करती है तू! कहीं बचपन भी लौटकर आया है कभी...तेरा भैया तो ठीक है न?" शम्भू ने कहा।

"मेरा अब कहाँ ठीक है शम्भू भैया !...जिसके दिल पर लाखों चोट पड़ चुकी हो, उसका दिमाग भला सही रह सकता है कभी !...मैं तो पागल होती जा रही हूँ।"

"साथ-साथ मुझे भी पागल करने का इरादा है क्या तेरा !...अब साफ-साफ सुन ले, रामदयाल का आसरा छोड़ दे ! चुपचाप गाँव चल, अगर मेरा नाम शंभू है तो देख लेना, रामदयाल से बदला जरूर लूँगा। अगर वह दूसरी शादी कर सकता है तो मुरली भी बिन ब्याहे नहीं रह सकती...." शम्भू ने जोश में आकर कहा।

"शंभू भैया ! देखो तुम फिर गुस्साने लगे न। सच जानो तुम्हारे गुस्से से बड़ा डर लगता है मुझे...कह दिया तुमसे कि नारी की बारात एक ही बार निकलती है।...अगर ऐसे ही क्रोध करोगे तो साथ नहीं निभेगा...तुम्हें गाँव जाना हो, चले जाओ।....मैं भीख माँग कर जीवन बिता लूँगी।—रास्ते में आने वाले सभी पत्थर को देवता नहीं मान सकती मैं। जिसे एक बार दिल दे चुकी..." मुरली ने दुखित होकर कहा।

"तुझे दुख देने के लिए नहीं बोला था मैं।" शंभू ने मुरली का हाथ पकड़ कर कहा—"चोट लग गयी हो तो क्षमा करना। मेरा दिमाग ही ऐसा है कि जरा-जरा सी बात पर क्रोध आ जाता है। रामदयाल ने तुम्हारा कितना अपमान किया मुरली। पता नहीं क्यों, कोई तेरा अपमान करता है तो मुझसे देखा नहीं जाता। बाकी बात रही साथ छोड़ने की—अगर साथ ही छोड़ना होता तो इतनी दूर तक निभाता नहीं... अगर मेरे साथ से तुम्हें दुख मिलता है तो बात दूसरी है। गाँव लौटने को मत कहो अब।...तुम अकेली चलो मुरली ! हम तुम्हारे पीछे चलेंगे। गिरने लगोगी तो शंभू का हाथ तुम्हारी खिदमत में हाजिर हो जायगा। भटकोगी तो राह बता दूँगा। भूल करोगी तो जता दूँगा। बचपन की

याद भूल गयी तू मगर मुझे तो एक-एक बात सपने की तरह याद है। बचपन के दिन नहीं लौट सकते मगर उसकी याद तो हमेशा ताजा रहती है। हम यादों के सहारे ही जी लेंगे..."

"शंभू भैया!" तड़प रही थी मुरली। शंभू की एक-एक बात उसके कलेजे पर घाव कर रही थी।

मगर शंभू कहता चला रहा था—"मुरली, शंभू तुम्हारे एक-एक दुख पर अपनी जान बिछाने के लिये हाजिर है! कभी मेरा दिल टटोल कर पकड़ सको तो, जानो!...यह दुनिया मतलबी है मुरली! उसी दुनिया का एक मतलबी मैं भी हूँ। आज सच-सच कह दूँ। बुरा मत मानना। मैं तुम्हें प्यार करता हूँ। जानती हो न कि मैं कितना बदसूरत हूँ—अगर आँखें होतीं तो तू मुझे देखना भी नहीं चाहती। लोग मुझ से घृणा करते हैं। तुझसे मुझे स्नेह मिला, प्यार मिला, और मैं तेरा भक्त बन बैठा। मुझे कुछ नहीं चाहिये मुरली, सिर्फ दर्शन भर मिलता रहे तुम्हारा, बस जिन्दगी कट जायगी..."

"शंभू भैया! अब चुप रहो शंभू भैया! मेरे दिल में बहुत घाव हैं। घाव पर घाव मत करो, नहीं तो सर पटक दूँगी।" मुरली ने शंभू के हाथ को जोर से दबा दिया।

शंभू चुप हो गया। जीवन का राज कहकर शंभू को बड़ी शान्ति मिल गयी थी। लगता था उसे कि उसका संजोया खजाना लुट गया हो। मुरली से अपने दिल की बात कहकर पछता रहा था वह। आवेश में आदमी कभी-कभी इतना खो जाता है कि वह जो बात नहीं कहना चाहता, वह भी कह देता है। यही हाल शंभू का था।

"तूने बुरा तो नहीं माना मुरली!" शंभू ने पूछा।

"नहीं शंभू भैया। तुम मेरा गला भी काट लोगे तो बुरा न मानूँगी।

सिर्फ एक बात मेरी मानो—उनकी बुराई मेरे आगे मत किया करो।" मुरली ने कहा।

"एक बात बताओगी मुरली!"

"पूछो!"

"तुम रामदयाल को इतना चाहने क्यों लगी। जब कि उसने तेरे साथ कोई भलाई नहीं की और तूने उसे देखा भी नहीं कभी और देखे-भी कैसे...."

"यह मुझे भी नहीं मालूम शम्भू भैया। मगर उनकी बुराई सुनकर चोट लग जाती है मुझे। जिसे दिल अपना मान बैठता है फिर पराया नहीं मानता। तुम्हारी बुराई भी किसी दूसरे के मुँह से नहीं सुन सकती मैं..." मुरली ने कहा—"उस दिन माँ तुम्हें बुरा-भला कहने लगी थी तो मैंने खाना भी नहीं खाया था।"

"तुझे माँ की याद नहीं आती क्या? बेचारी तुझे पागल बनकर खोजती होगी। मुझे क्या समझती होगी काकी।" शम्भू ने मुरली के चेहरे की ओर देखते हुए कहा।

"माँ की याद किसे नहीं आती शम्भू भैया। मगर एक बार जो कदम निकल चुका है, वापस लौटना नहीं चाहता....। गाँव के लोग बदनामी भी तो फैला दिये होंगे। कौन सा मुँह लेकर गाँव जाऊँगी...नारी घर से निकल कर बदनाम हो जाती है। तुम पुरुष हो, तुम्हारा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकेगा। तुम चाहो तो..." कहते-कहते मुरली चुप हो गयी।

"चले जाओ! यही कहना चाहती थी न। तो रुक क्यों गयी?" शंभू ने प्रश्न किया। फिर बोला—"अब तो यह साथ नहीं छुटेगा मुरली! छुड़ायेगी भी तो मौत ही।"

चारो ओर से निराश मुरली गाँव घर और माँ की ममता भी त्याग बैठी। शंभू ने भी उसी दुखिया का साथ देना स्वीकार किया। मुरली के

स्नेह में वह बचपन के खेल से ही बँध चुका था और अब जवानी के सपनों में भी साथ ही हाथ थाम कर राह तय कर रहा था। मुरली के सिवा अब दुनिया में कोई नहीं था उसका। माँ बचपन में ही साथ छोड़ बैठी थी, पिता होश के दो-चार जूते पड़ जाने पर स्वर्गवासी हो गये थे। किसके लिये वह गाँव लौटता अब !

दोनों चलते-चलते पास के शहर में पहुँचे।

शंभू के लिये शहर का आकर्षण, भीड़-भाड़, चिल्लाने, हटो-बढ़ो, खतरा है बच के चलो, सूट-पैंट, मोटर-रिक्शा, बग्गी-टमटम आदि बिलकुल नया था। वह तो ठेठ देहात का बाशिन्दा था। वह जानता भी नहीं था कि किस्मत उसे शहर के कोलाहल मय वातावरण में फेंक देगी। मगर शंभू भी एक ही था। वह डरा नहीं, बढ़ता हो गया बच-बच कर। कभी कभी मुरली के बारे में सोच-सोच कर काफी चिन्तित हो उठता था वह। मुरली को सिर्फ दिल की बीमारी ही होती तो कोई बात नहीं थी। रामदयाल की ठोकर खाने के बाद से ही उसे बुखार-सा रहा करता था। मगर मुरली को इसका ध्यान कहाँ ! उसे तो किसी वस्तु की चिन्ता नहीं थी। उसके मन पर रामदयाल की ख्याली तस्वीर झूलती रहती। कभी घोड़े पर सवार, कभी कुछ-तो कभी कुछ। घोड़े की याद भी बहुत हलकी-हलकी थी उसके मनमें। इतना जानती थी सिर्फ कि उसके चार पैर होते हैं। उसका हिनहिनाहट पहचान लेती थी वह।

शंभू ने मुरली के कहने से काम-काज खोजना शुरू किया। कई दिनों के उपवास ने दोनों को क्षीण बना दिया था। उदासी और चिन्ता ने उन्हें शिथिल कर दिया था। किसी के पास काम के लिये जाता वह तो लोग भिखमंगा समझ कर कुछ पैसे दे देते। शंभू कुछ समझ भी नहीं पाता।

आखिर एक दिन नौकरी की खोज में घूमता-घामता शंभू मुरली के

साथ एक मकान के सामने गया। वहाँ बड़ी भीड़ लगी थी। कुछ लोग लाइन में खड़े थे। वह भी भीड़ चीरता हुआ मुरली का हाथ थामें लाइन में खड़ा हो गया। उसके गंदे कपड़े और देहाती ढंग के पहनावे को देख कर लोग उसकी तरफ देखने लगे। वह समझ नहीं पा रहा था, आखिर लोग उसकी ओर क्यों देख रहे हैं ?

"क्या हुआ है तुम्हें ?" एक व्यक्ति ने पूछा शंभू से।

"नौकरी चाहिये !" शंभू ने कहा।

"यहाँ नौकरी नहीं मिलती...दवा मिलती है....दवाखाना है यह !"

शंभू ने सुना। सोचा, क्यों न लगे हाथ मुरली को दिखा दे। बेचारी बीमार है।

जब शंभू की बारी आयी तो वह भी भीतर बुलाया गया। वह मुरली को लेकर भीतर पहुँचा। भीतर की सजावट देख कर दंग रह गया वह। सामने कुर्सी पर चश्मा लगाये डाक्टर साहब बैठे थे। डाक्टर का नाम था श्री नाथ। शहर में बड़ा नाम था। अभी हाल ही में विलायत से पास करके आये थे। सर्जरी के विशेष विशेषज्ञ थे।

"क्या हुआ है तुमको ?" डाक्टर साहब ने पूछा।

"मुझे कुछ नहीं हुआ है सरकार ! जरा इसे देख लीजिए। कई दिनों से बुखार आ रहा है।" शंभू ने मुरली की ओर संकेत करके कहा—"अच्छी है सरकार !"

डाक्टर श्रीनाथ ने मुरली की नाड़ी देखी। फिर पुर्जा लिखा। बोले—"बाहर से पैसे देकर दवाई ले लो !"

"हमारे पास पैसा नहीं है हजूर ! क्या मुफ्त नहीं मिल सकती है... हम तो नौकरी की तलाश में आये थे। पता चला, यहाँ दवा मिलती है। सोचा इसे दिखा दूँ...हम बहुत गरीब हैं सरकार ! गाँव से आये हैं। कुछ जानते-बुझते नहीं। आपके यहाँ कोई नौकरी मिल जाय तो....बड़ी

ऐसा करूँगा सरकार ! भगवान कसम, खुश हो जायेंगे हजूर !" शंभू ने निरीह बन कर साधारण ढंग से सारी बात कह डाली।

डाक्टर को तरस आ गया उन दोनों पर और शंभू नौकर बहाल कर दिया गया।

नौकरी मिलने के बाद शंभू ने शहर में ही एक छोटा से घर किराये पर ले लिया। मुरली वहीं पर रहने लगी। शंभू दिन भर ड्यूटी देता, शाम को घर आता। मुरली आकुल होकर उसकी प्रतीक्षा करती रहती।

डाक्टर साहब की दूकान उनके घर में ही थी। शंभू कभी-कभी उनके घर का भी काम कर दिया करता, नहीं तो वर्दी पहने हाथ में भाला लिये सिर्फ चौकीदारी करता। लोगों के आने-जाने का बैठने-उठने का इन्तजाम भी करता। कभी-कभी मुरली भी उसके साथ चली आती और एक जगह बैठी रहती चुपचाप। लोगों को उसपर बड़ी दया आती। अन्धों पर दया का आना तो स्वाभाविक है। डाक्टर श्रीनाथ भी उसे देखते, दो-चार बातें करते। अविवाहित डाक्टर कभी-कभी उसके आकर्षण में बँध जाता। उसे वह अच्छी लगती, पता नहीं क्यों? शायद इसलिये कि वह अन्धी थी, अपाहिज थी और रूपवती भी थी। ऐसी अवस्था में उससे हमदर्दी होना तो मनोवैज्ञानिक सत्य था।

एक दिन डाक्टर श्रीनाथ अपने घर में बैठे थे। दोपहर का समय था। आराम की घड़ियाँ। दवाखाना बन्द था। मुरली भी उन्हीं के यहाँ थी। डाक्टर साहब की सिर्फ माँ थी और कोई नहीं। शम्भू डाक्टर साहब का खाना लेकर उनके कमरे में गया।

मेज पर खाना रखा उसने तो डाक्टर श्रीनाथ ने पूछा—"मुरली को यहीं ले आये हो क्या ?"

"हाँ सरकार ! नीचे आँगन में माता जी के पास बैठी है...वहाँ अकेले जी घबराता है न, सो यहीं लेता आता हूँ। अभागिन है सरकार !"

"जनम से अन्धी है ?" डाक्टर श्रीनाथ ने खाते हुए पूछा।

"नहीं सरकार, बचपन में..."

"ठीक है, मैं उसकी आँख देखूँगा..."

"उसकी आँखें मिल जायँगी सरकार !...आपकी मेहरबानी...आप देवता हैं सरकार ! हम लोगों को आपने सहारा देकर जिन्दगी दी...अब उसे आँखें देकर स्वर्ग दिखला देंगे ।" शंभू ने हाथ जोड़ कर विनती के स्वर में कहा। डाक्टर श्रीनाथ उसकी निगाह में भगवान बनते जा रहे थे। इतना बड़ा आदमी और इतना उदार ! शंभू ने कभी नहीं सोचा था।

खा-पीकर थोड़ी देर आराम करने के लिए डाक्टर श्रीनाथ बिस्तर पर लेट गये। शंभू पैर दबाता रहा। आध घंटे बाद डाक्टर अपनी डिस्पेन्सरी में आये।

शंभू ने मुरली से बताया कि तुम्हारी आँख डाक्टर साहब ठीक कर देंगे। सुनकर नाच उठी वह। बोली—"शंभू भैया ! डाक्टर साहब से कह दो इस अहसान के बदले मुरली उन्हें कुछ न दे सकेगी। उसके पास अपना जीवन है, और वह जीवन भी पराये बस में है।"

"बदला नहीं चाहते हमारे मालिक ! बड़ा दिल वाला आदमी है...आँख होगी तो देखोगी...बिल्कुल भगवान जैसा रूप है।" शम्भू ने कहा।

मुरली मन ही मन हाथ जोड़ कर डाक्टर साहब को दुआयें देने लगी।

गी।

अन्धी की दुनिया उजाड़ कर रामदयाल ..

जो दूसरों को सताये भला वह सुखी भी कैसे रह सकता है। उसको भगवान ही बताते हैं। उसी साल गाँव में बहुत जोर हैजा फैला।

और हैजे ने रामदयाल की जिन्दगी में अँधेरा ला दिया। उसके पिता ठाकुर सजीवनलाल एक दिन हैजे की हवा से बेहोश हुए। के-दस्त होना शुरू हुआ। रामदयाल ने बहुत हाथ-पैर फटकारा, मगर उसकी एक न चली। डाक्टर और उनकी दवाइयाँ सब बेकार हो गयीं। देखते ही देखते क्रूर, निर्दयी और निठुर ठाकुर का जनाजा निकल पड़ा। उस हैजे में भी जब गाँव में यह खबर फैली तो एक बार खुशी की लहर चारों ओर दौड़ गयी।

चार-पाँच दिन बाद ही उसकी दूसरी पत्नी—सुशीला हैजे के पंजे में पड़कर छटपटाने लगी। रामदयाल का जैसे जीवन लुटने लगा। बड़े-बड़े डाक्टर इलाज में लगे मगर मौत का इलाज कौन कर सकता है!

.ि

..न की दौलत

, और अभी जवान

..ख-लाख अरमान, हजार

, मन में तृष्णा, हृदय में भूख की

...या वह। जवानी का जोश तो बरसाती नदी की भाँति होता है। और बरसाती नदी पर कौन बाँध बाँध सका है?

उसे अमीर और मूर्ख देखकर हजारों साथी मिल गये। और उसकी हजामत बनाने लगे। नाच-गाने, साकी-शराब और न जाने क्या-क्या! कमी ही किस बात की थी? जिस आदमी के पास अक्षय सम्पत्ति हो उसके आगे तो संसार के सारे सुख नतमस्तक!

रामदयाल वासना के वशीभूत होकर खुलकर खेलने लगा।

शहर के उस भाग में, जहाँ के लोग रात को जागते और दिन को सोते हैं, वहाँ रामदयाल का नाम चम्पा की खुशबू की तरह बदनाम हो गया। उसे अपने पास बुलाने के लिये सभी दामन फैलाये रहते। लेकिन रामदयाल था कि किसी की सुनता नहीं। जो करता अपने मन से, अपने धन से।

● ● ● ●

Raj Kapoor ... noise

डाक्टर श्रीनाथ ने मुरली की आँखों की चिकित्सा शुरू कर दी। उपचार के सिलसिले में मुरली डाक्टर श्रीनाथ के घर में ही रहने लगी। डाक्टर साहब पूर्ण मनोयोग से उसकी देख भाल करने लगे।

मुरली डाक्टर के अहसान से दबने लगी। उसके मन में युवक डाक्टर भगवान बनकर बैठ गया। हमेशा उस सहृदय डाक्टर के बारे ही में सोचती रहती वह।

आदमी को दुख के दिनों में जरा भी किसी की सच्ची सहानुभूति मिल जाती है तो वह अपना सारा दुख भूल बैठता है। और डाक्टर श्रीनाथ तो मुरली से स्नेह करने लगे थे।

युवक थे और अविवाहित भी और मुरली थी अंधी मगर रूपवती, सौन्दर्यमयी।

मुरली के लिये डाक्टर के हृदय में जगह होने लगी। वे उसकी ओर आकर्षित होने लगे। कुछ तो मुरली की दीनता और कुछ उसके नेत्र विहीन सौन्दर्य ने उनके मन सहानुभूति पैदा कर दी। सहानुभूति बढ़ते बढ़ते बढ़कर स्नेह में परिणत हो गयी।

मुरली भी डाक्टर की ओर आकर्षित होने लगी। जब तक डाक्टर श्रीनाथ उसके पास बैठे रहते—मुरली मधुर स्वर में बजती रहती। उसके अधरों पर मुस्कान की रेखा खिंची रहती। और जब उससे जुदा होती, उसके मन के किसी कोने से उदासी उठकर उसके चांद पर छा जाती।

शम्भू आजकल अकेला पड़ गया था। वह शहर के घर में ही रहता था। कभी-कभी डाक्टर साहब के घर पर ही ठहर जाता। उसे मुरली से मिलने का मौका बहुत रहता मगर बात करने का सौभाग्य बहुत कम मिलता। अपने मन की व्यथा मुरली को सुना नहीं पाता वह।

वह तड़प कर रह जाता, मगर यह सोचकर उसे शान्ति भी मिलती कि मुरली की आँखें मिल जायेंगी। और वह उसे देख सकेगी।

मुरली उसे देखेगी। उसे चाहेगी? कितना कुरूप है वह। उसके पैर के तलवे के बराबर भी नहीं है।

अभी-अभी डाक्टर साहब चाय पर से उठे हैं और सीधे मुरली के पास आ गये हैं।

'कैसी हो?"

"अच्छी हूँ!" मुरली बोली—"डाक्टर साहब।...मुझे दिखाई देने लगेगा? अगर नहीं दिखाई दिया तो..."

"यह तो भगवान पर है मुरली, कोशिश तो बहुत कर रहा हूँ।" डाक्टर श्रीनाथ बोले।

"आप भी भगवान को मानते हैं डाक्टर साहब।" मुरली ने पूछा।

"क्यों, नहीं मानूँ क्या? भगवान ने तो हमें भी बनाया है।"

"भगवान को भगवान कैसे बना सका। मेरी समझ में तो कुछ नहीं आता डाक्टर साहब!" मुरली हँसकर बोली।

डाक्टर हो-हो कर हँसने लगे। बोले—"तुम मुझे भगवान मानती हो। पागल हो तुम मुरली! अभी तो मैं इन्सान भी नहीं बन सका हूँ।"

"यह आप कह सकते हैं डाक्टर साहब! मेरा मन तो भगवान मानता है आपको। आपकी दया पाकर हम लोग जी उठे हैं....शम्भू भैया कहते हैं, आप बड़े अच्छे आदमी हैं..."

मुरली के भोलेपन पर डाक्टर श्री नाथ रीझ उठे। उसके शान्त-सौम्य सौन्दर्य मय मुखड़े की ओर अपलक देखते रहे।

"तुम मुझसे भी अधिक अच्छी हो मुरली!" डाक्टर साहब ने कहा—"आँख मिल जाय तुम्हें तो आइने में कभी देखकर जान लेना।"

कहकर डाक्टर साहब ने मुरली के हाथों को अपने हाथों में ले लिया। कुछ देर उनसे खेलते रहे। सहलाते रहे। उसकी नाजुक उँगलियों को

अपनी उँगलियों में उलझाते रहे। कभी दाब कर बजाते रहे। मुरली को भी काफी सुख मिल रहा था इससे। वह भी चुप थी और डाक्टर भी।

मुरली को जीवन में ऐसा सुख कभी नहीं मिला था। किसी के स्पर्श से दिल में दर्द नहीं उठा था उसके।

जब कभी डाक्टर उसका हाथ पकड़ लेते, मुरली बेहोश सी हो जाती। बेसुध होकर पड़ी रहती।

वह नहीं जानती थी कि आखिर उसके मन में डाक्टर साहब क्यों छाये जा रहे हैं।

डाक्टर श्री नाथ भी कम बेचैन नहीं थे। वे रोज अपने दिल की बात सोचकर आते मगर कुछ कह नहीं पाते।

बेचैनी बढ़ती गयी। दिल भिंचता गया। और दिन गुजरते गये।

और देखते ही देखते तीन महीने बीत गये।

मुरली की आँखें ऑपरेशन योग्य हो गयीं। डाक्टर श्रीनाथ ने एक दिन शंभू और मुरली से कहा—"परसों मुरली का ऑपरेशन करूँगा।"

सुनकर मुरली घबरायी। शंभू का मन भी डोला—अगर कहीं फायदा नहीं हुआ तो—

डाक्टर ने मुरली को सान्त्वना दी। शंभू को धीरज बँधाया।

निश्चित दिन मुरली का ऑपरेशन किया डाक्टर ने। मुरली की आँखों पर पट्टी बँध गयी। वह मन ही मन रात-दिन के फर्क, अँधेरे और उजाले का अन्तर देखने लगी। दुनिया किसे सुन्दर और किसे कुरूप कहती है, वह मन ही मन कल्पना करने लगी।

शम्भू कभी-कभी काम से खाली होकर अक्सर मुरली के पास आ बैठता। बातें करता। उसका जी बहलता।

मुरली कहती—"शंभू भैया! तुम्हारे सरकार बड़े भले हैं। बहुत मानते हैं मुझे!"

"चाँदनी किसे भली नहीं लगती मुरली !" शंभू कहता।

"चाँदनी देखने में कैसी होती है शंभू भैया !..." मुरली प्रश्न कर बैठती।

"चाँदी जैसी !"

"और चाँदी !" मुरली की उत्सुकता बढ़ती ही जाती।

"आँखों में रोशनी आयेगी तो देख लेना सब !"

"तुम लोगों को देखने की बड़ी अभिलाषा है शंभू भैया ! खास कर तुम्हें...तुम्हारा हाथ किधर है शंभू भैया ! मेरे हाथों में दे दो...तुम अधिक बोलते नहीं आजकल ! कोई दुख है क्या !...मेरी आँखों में रोशनी आ जायगी तो तुम्हें बुरा लगेगा ! अगर ऐसी बात है तो मैं आँख नहीं बनवाऊँगी ! मैं तुम्हें दुखी देख कर आँखों का सुख नहीं उठाना चाहती। ऐसे ही भली अच्छी हूँ !" मुरली करुण स्वर में बोलने लगी।

शंभू ने उसके मुँह पर हाथ रख दिया। बोला—"ऐसा नहीं बोलते मुरली ! तेरी आँखों की रोशनी के लिये तो जान भी दे सकता हूँ मैं। ...भला क्यों बुरा लगेगा मुझे ! तू सबको देख सकेगी, रामदयाल को देख सकेगी, डाक्टर साहब को देखेगी और अपनी माँ को भी और..." कहते-कहते चुप हो गया शंभू।

"और तुम्हें भी शंभू भैया ! अपने को भूल क्यों जाते हो तुम !" मुरली ने शंभू का हाथ दबा दिया—"सबसे पहले तुम्हें ही क्यों नहीं ! अपने को नहीं दिखलाना चाहते क्या !...अगर तुम अपने को देखने नहीं दोगे तो मैं बेआँख ही भली। मैं आँख नहीं बनवाना चाहती !"

"क्यों नहीं बनवाना चाहती मुरली !" किसी ने वहाँ प्रवेश कर कहा।

शंभू और मुरली दोनों चौंक पड़े।

शंभू ने देखा—डाक्टर श्रीनाथ थे। वे आकर कुर्सी पर बैठ गये। शंभू खड़ा हो गया, उसकी मुद्रा गंभीर थी।

"डाक्टर साहब! शंभू भैया कहता है, तेरी आँखें ठीक हो जायेंगी तो मैं अपने आपको नहीं देखने दूँगा...।" मुरली ने शिकायत की।

"तुम दोनों पागल हो।" डाक्टर साहब ने कहा—"क्यों शंभू क्या बात है?"

"कुछ नहीं सरकार! यह मुरली है न, सोचती-समझती नहीं कुछ और बकने लगती है।" शंभू ने कहा।

कह कर शंभू चला गया। डाक्टर और मुरली रह गये अकेले।

"शंभू भैया!" मुरली ने अघोर स्वर में पुकारा।

"चला गया!" डाक्टर श्रीनाथ बोले।

"डाक्टर साहब!" मुरली ने कहा—"शंभू भैया क्या बहुत बद-सूरत है?"

"कौन कहता है?"

"वही कहता है...इसीलिये अपनी सूरत नहीं दिखाना चाहता है मुझे।" मुरली बोली—"आप कैसे हैं डाक्टर साहब!"

"मैं भी बहुत खराब हूँ मुरली...ये बेकार की बातें हैं। शंभू जैसा वफादार आदमी मिलना मुश्किल है।" डाक्टर साहब बोले—"अच्छा तुम आराम करो, परसों तुम्हारी पट्टी खुलेगी तो...अच्छा मैं चला अब।"

डाक्टर साहब उठ कर बाहर आये। दीवार के शीशे में उन्हें अपनी शक्ल दिखाई पड़ी। साथ ही मुरली का स्वर कानों में गूँज उठा—"आप कैसे हैं डाक्टर साहब!" उनके मन में सुख की अनुभूति हुई। हृदय पुलक से भर उठा। मीठी-मीठी बेचैनी छा गयी उन पर।

● ● ● ●

"रघू भैया !" शंभू ने पास खड़े आदमी से कहा—"आज कुछ सर में दरद हो रहा है। जी घबड़ा रहा है...मैं घर जा रहा हूँ।"

"लेकिन शंभू ! आज तो तेरी बहन की पट्टी खुलेगी !...डाक्टर साहब उसे आंख घर में ले गये हैं। ठहर कर जाना न !" रघू ने कहा।

"मुझे मालूम है...मगर तबियत बड़ी बेचैन है..." कह कर शम्भू अपने घर चला गया।

उसके मन में अजीब सवाल उठ रहे थे। मुरली को आँखें मिलेंगी। उसे देखकर क्या सोचेगी वह ? उसके आगे नहीं जायेगा वह। नहीं-नहीं उसे उसके पास जाना चाहिये। मुरली उसे खोजेगी। उसने कहा था—"कभी आँख होगी तो आजमा लेना...कितना मानती हूँ तुम्हें।" शम्भू फिर उठकर डाक्टर साहब के घर चला आया।

अत्यधिक व्यग्र होता जा रहा था वह।

उधर—

अँधेरी कोठरी में डाक्टर श्रीनाथ मुरली की पट्टी खोलने में लगे थे। चारों ओर काले पर्दे झूल रहे थे। काल कोठरी की तरह भयानक लग रहा था वह स्थान।

धड़कते कलेजे से डाक्टर श्रीनाथ ने मुरली की पट्टी खोली। स्पन्दित हृदय से मुरली अपनी पलकें खोलने लगी।

उसके पलकों की दूरी बढ़ने लगी। बड़ी-बड़ी आँखें झाँकने लगीं।

"कुछ दिखाई पड़ता है ?" डाक्टर ने प्रश्न किया।

"नहीं।"

डाक्टर को लगा जैसे उसके जीवन भर की साधना पर किसी ने थूक दिया हो।

थोड़ी रोशनी और की गयी।

"अब ?"

डाक्टर श्रीनाथ ने मुरली की आँखों के आगे हाथ हिलाना शुरू किया। बोले—"यह क्या है...कितनी उँगलियाँ हैं ?"

मुरली ने हाथ बढ़ाकर डाक्टर का हाथ अपने हाथों में थाम लिया। उसने अपनी आँखें खोलीं, फिर बन्द कीं। टटोला—सोचा। बोली—"यह आपका हाथ है डाक्टर साहब !—मुझे दिखाई पड़ रहा है...और आप भी...." और मुरली की नजर सामने खड़े डाक्टर पर गड़ गयी।

उजाला बढ़ गया कमरे में। मुरली को सारी चीजें अजीब सी लग रही थीं।

"शम्भू भैया !... कहाँ हो तुम ! मुझे दिखाई पड़ने लगा !" मुरली बोली—"डाक्टर साहब, शम्भू भैया को बुलाइये !"

शंभू आया। मुरली ने देखा—

पास खड़े डाक्टर और उसमें कितना भेद था। हतप्रभ-सी देखती रह गयी वह।

फिर चीख-सी पड़ी—"शम्भू भैया ! तुम इतनी दूर क्यों खड़े हो... मुरली को गले से लगा लो...मैंने कहा था न—कभी आँखें होंगी तो..."

"मुरली मेरी बहन !" खुशी से पागल होकर शंभू ने उसे अपने कलेजे से बाँध लिया।

मुरली को आँखें मिल गयीं। डाक्टर श्रीनाथ ने कुछ दिन तक दवा जारी रखी। उसको धूप और अधिक रोशनी में निकलना मना हो गया।

डाक्टर अपनी सफलता पर अधिक प्रसन्न था।

शम्भू और मुरली दोनों डाक्टर श्रीनाथ के पैरों पर गिर पड़े। बोले—"डाक्टर साहब ! हम गरीब को आपने जीवन दिया। इस अहसान का बदला कभी नहीं चुका सकेंगे सरकार !...आपने भगवान का काम किया !"

मगर डाक्टर श्रीनाथ को यह सब कुछ नहीं चाहिये था। उन्होंने

जो कुछ किया था प्रेम के वशीभूत होकर। और प्रेम के आगे तो दुनिया की सारी वस्तु तुच्छ होती है !

डाक्टर श्रीनाथ ने उन दोनों को अपने घर में ही घर दे दिया। शहर का मकान छोड़कर दोनों यहीं आ गये। दिन कटने लगे।

इसी बीच मुरली को पढ़ाने के लिये डाक्टर साहब ने मास्टरनी रख दी। उसकी बुद्धि तीक्ष्ण थी। प्रतिभाशाली मस्तिष्क ज्ञान पाकर विकसित होने लगा।

डाक्टर साहब और मुरली का मिलना बन्द कैसे होता? अक्सर दोनों बात किया करते। मुरली को डाक्टर साहब से और उनकी माता से इतना अपनत्व मिला कि वह सारा दुःख भूल बैठी।

वह सबको भूल बैठी।

और एक दिन—

रात को दस बजे होंगे। मुरली अपने कमरे में किताब खोलकर पाठ याद कर रही थी। उसी समय डाक्टर श्रीनाथ नाइट ड्रेस में आये। मुरली ने देखा—डाक्टर साहब के चेहरे पर व्यथा के चिह्न थे। जीवन देने वाले डाक्टर को कौन सी पीड़ा सता रही है, वह नहीं जान सकी।

डाक्टर साहब उसके समीप, बिल्कुल समीप आकर बैठ गये। मुरली को बुरा नहीं लगा। डाक्टर के किसी व्यवहार से उसे कष्ट नहीं होता था।

"मुरली!" डाक्टर साहब का स्वर कांपता हुआ था।

"कहिये?" मुरली ने डाक्टर साहब की ओर स्थिर नजरों से निहारा।

"आज मैं बहुत बेचैन हो गया हूँ। जीवन में ऐसा कभी नहीं हुआ था। लगता है कोई मुझे...मुझे..." कहते कहते डाक्टर साहब रुक गये, भरी आँखों से उसकी ओर देखा। आँखें लाल थीं, लगती थी कुछ देर पहले रोयी हों। मुरली चुप रही।

फिर बोले वे—"तुम मुझे अच्छी लगती हो—बहुत अच्छी—जीवन

में इतना अच्छा तो कोई नहीं लगा। तुम्हारे बाल, तुम्हारी आँखें, तुम्हारी आवाज, तुम्हारा सब कुछ...तुम्हें देखने का ही जी चाहता है..."

"आपको देखने से कभी मना नहीं किया...आप कैसी बातें कर रहे हैं...बेचैन मालूम पड़ते हैं।" मुरली ने सरल स्वर में कहा।

"सचमुच बेचैन हूँ मैं।" और डाक्टर ने उसका हाथ पकड़ कर दबा दिया। उसके हाथों को अपने गालों, अपने अधरों से लगाया।

मुरली को बहुत अच्छा लगा।

"मैं तुम्हें प्यार करता हूँ मुरली!...मुरली, मुरली मैं तुम्हारे बगैर जी नहीं सकता...तुम मेरी शक्ति हो, जीवन हो!" भावावेश में डाक्टर ने मुरली के मुख को खींचकर उसके गालों पर अधर रख दिया। चूम लिया उसे।

मुरली घबड़ा उठी। उसने जैसे-तैसे अपने को छुड़ा लिया।

"नाराज हो गई तुम!"

"नहीं डाक्टर साहब! मैं आपके किसी कृत्य से नाराज नहीं होती... मैं भी आपको बहुत चाहती हूँ पर..."

"पर क्या!"

"मैंने आपको धोखे में रखा...मेरा विवाह हो चुका है...मैं कितनी मजबूर हूँ!" और मुरली ने अपने जीवन की दर्द भरी कहानी डाक्टर श्री नाथ को सुना दी।

सुनकर डाक्टर खामोश हो गये। थोड़ी देर बाद बोले—"मुरली, मैंने तुमसे प्रेम किया है। यह जान रखो मुरली कि तुम्हारे बिना डाक्टर श्रीनाथ का जीवन हमेशा सूना रहेगा।...तुम्हारे लिए जो कुछ हो सकेगा, अवश्य करूँगा।...तुम्हारी बात टाली नहीं अब तक। जो कहोगी वो करूँगा।"

मुरली ने डाक्टर श्री नाथ से कहा—"मुझे प्यार करते हो तो मेरी एक बात मानो...तुम अपनी शादी कर लो।"

सुनकर डाक्टर ने मुरली की आंखों में ताका। मुरली की आंखों में आंसू थे। डाक्टर ने अपना सर मुरली की छाती पर पटक दिया। मुरली ने उसे कस लिया।

दोनों खूब रोये, जी भर कर।

चाहे लाख करो तुम पूजा
तीरथ करो हजार। दीन दुखी
को ठुकराया तो सब कुछ है
बेकार। गरीबों की सुनो वह
तुम्हारी सुनेगा।

रामदयाल ने अपनी जमींदारी को जब से अपने हाथ में लिया है, तब से खूब मौज उड़ाता है वह। अपार धन ने रामदयाल के मन को अवारा बना दिया है।

उसकी दुनिया रंगीन हो उठी है। वह जमींदारी का ख्याल भी त्याग बैठा है; तारापुर में बहुत कम रहता है। अधिक रहता है शहर में ही। शहर की रंगीनियों में बुरी तरह फँस गया है।

शहर के उस भाग में, जहाँ दौलत से इन्सान का ईमान, जवानी, रूप सभी कुछ खरीदे जाते हैं—वहाँ रामदयाल का खूब नाम है। रोज-रोज अपनी प्यास बुझाने के लिये नयी सरिता उसे चाहिये। जिस प्याले में एक बार शराब पी लेता है, दूसरी बार अच्छा नहीं लगता उसे।

"राजा साहेब!" किसी ने शाहशाही ढंग से उसके आगे सलामी दागी।

चि० वि०

"क्या है ?" रोबीला स्वर था रामदयाल का—"क्या बात है ? कोई नया माल ?"

"बिल्कुल नया !" आने वाले व्यक्ति ने कहा—"देखकर तबियत खुश हो जायगी हुजूर !...अभी-अभी कल ही तो आयी है। हुस्न क्या है हजूर आसमान का चाँद, चाँदी की चमक, उसके आगे सब नाचीज़ ! आवाज़ तो ऐसी कि पत्थर का कलेजा भी मोम बन जाय। एक बार कोई उसे देख ले तो जिन्दगी भर पछताता रहे। मगर वह भी एक ही कातिल है हुजूर ! कितने लोग आये मगर किसी को हाथ न लगाने दिया ! कसम इस बुजुर्गी की, इस नाचीज ने अपनी जिन्दगी में ऐसा हुस्नोशबाब कभी नहीं देखा...बिल्कुल ख्वाब की तरह हसीन है..."

"मेरे हाथ से कोई नहीं बचा है...नाम क्या है ?"

"बेला हुजूर ! शहर में बेला की तरह खुशबू फैली है उसकी कि सूँघ-सूँघ कर दिल मुअत्तर हुआ जाता है।"

रामदयाल दिन भर बेला के बारे में ही सोचता रहा।

बड़ी इन्तजारी के बाद शाम आई। रामदयाल आज बड़ी शान से सजा। तेल-फुलेल, इत्र-फित्र लगाकर पूरा लाट साहब बन गया। उसके दिलदार दोस्त उसके साथ हो लिये। और चल पड़े बेला की खुशबू लूटने।

और इधर—

आधी रात के पहले ही बेला की कली खिल उठी थी। खुशबू चारों ओर फैल रही थी। तबला-सरंगी साथ-साथ उसके मीठे गले का स्वर। वातावरण रंगीन हो उठा था। विचित्र तरह की जिन्दगी छायी हुई थी वहाँ।

आस-पास सुनने वालों की भीड़ थी। दिलवाले दिल थामे, आँखें बिछाये, उसके तीरेनजर से घायल होने लिये बेताब थे।

संगीत गूँज रहा था—

"दिल है, जिगर है, जाँ है, जो चाहो सो ले लो,
इन चीजों का हम तुमसे कोई दाम न लेंगे।"

तभी—

भीड़ अपने आप दो तरफ हट गयी। बीच में रास्ता बन गया। हुस्न के बाजार का सौदागर रामदयाल अपने साथियों के साथ आया और उसे किसी ने रोका नहीं। उसके पास दौलत थी और दौलत के लिये दुनिया के सभी दरवाजे खुले हैं।

आकर बेला के ठीक सामने खड़ा हो गया, अकड़ कर। पर वह भी एक ही थी—उसने उसकी परवाह नहीं की। उसकी इज्जत में उठकर आदाब भी नहीं बजाया। गाती रही—

"पहलू में बिठा कर तुम्हें देखा करेंगे यों—
तुम्हारी कसम और तुमसे कोई काम न लेंगे।"

"आफरीं, सद आफरीं—खूब, बहुत खूब!" रामदयाल ने जोर से कहा। साथियों ने तालियाँ बजायीं।

नग़में टूट गये, सदमे घिर आये। रामदयाल की निगाह बेला से मिली—और बेला की रामदयाल से। कुछ देर तक दोनों एक दूसरे को परखते रहे, तौलते रहे, तुलते रहे।

फिर बोली वह—"बैठिये हुजूर! बहुत वक्त हो गया आपको आये और नाचीज ने सरकार को बैठने नहीं कहा—गुस्ताख की बेअदबी मुआफ!"

"तुम्हारी तरह मुस्कराने वाले बेदबी करना नहीं जानते मेरी जान!.... तुम्हारा तो हजार खून मुआफी के काबिल है..." रामदयाल ने बैठते हुए कहा।

"कोई ग़ज़ल होती रहे रामदयाल भाई!" दोस्तों ने फरमाईश की।

"जरूर !"

और रामदयाल का इशारा पाकर बेला कूक उठी—

"लड़ी हैं जो आँखें, न सबसे लड़ेंगी,
दिखाने को झूठा इशारा रहेगा।
सभी यूँ कहेंगे—'मेरी दिलरुबा है'—
मगर दिल का सबसे किनारा रहेगा।
फँसाने को वहशी बनूँगी सभी की,
तुम्हारे लिये इक नजारा रहेगा।
मेरा दिल हजारों से खेला करेगा,
मगर दिल पे कब्जा तुम्हारा रहेगा।"

"वह तो है ही !" सबने सम्मिलित स्वर में कहा।

रात चढ़ गयी। शराब के नशे से सभी बुत हो गये। शमा बुझ गयी। बेला अँधेरे में ठहरी नहीं वहाँ। बेहोश परवानों को जला कर दूसरे कमरे में चली गयी।

रामदयाल का रोज आना-जाना जारी रहा। अब वह बेला के कहे मुताबिक अकेले आता। और एक दिन—बेला ने रामदयाल को शराब पिला कर, अपनी आँखों को शराब से जिन्दगी देकर, उसका दिल जीत लिया और उससे उसकी सारी जायदाद अपने नाम लिखवा ली। और रामदयाल को खाली प्याले की तरह ठुकरा दिया !

बेला की ठोकर खाकर रामदयाल दूसरे कोठे पर चला गया।

● ● ● ●

बूढ़ी माँ मुरली की शोक में तड़प-तड़प कर जी रही थी। जीर्ण-शीर्ण शरीर मौत के नजदीक पहुँचता जा रहा था। उसने सबका विश्वास किया मगर किसी ने उसका साथ नहीं दिया।

मग्गू और अनूप ने सहारा देकर उसे लूटा और ठोकर मार दी।

बेचारी माँ गाँव की दया पर जी रही थी आजकल। उसे कुछ अच्छा नहीं लगता था। सिर्फ रोना अच्छा लगता था। वह रोती, मुरली को पुकार-पुकार कर रोती—मगर मुरली तो थी बहुत दूर तो कैसे उसके आँसू पोंछने आती।

अपनी झोंपड़ी में भूखी-प्यासी पड़ी थी वह। तभी किसी ने पुकारा—"काकी!"

"नग्गू है क्या! अब क्या रक्खा है मेरे पास जो आया है। मेरी जान का भूखा है क्या तू!" कहकर मुरली की माँ ने आँखें उठा कर व्यक्ति की ओर देखा—"अरे, तू तो नग्गू नहीं है...कौन है!"

"पहचानती नहीं काकी, मैं तेरा शंभू हूँ, बहुत दुबला हो गया हूँ न। बहुत दुख उठाया...और बहुत दिया भी।" शंभू पास आकर बैठ गया।

"शंभू! मुरली कहाँ है!" बुढ़िया चीख पड़ी—"तू तो पूरा दगाबाज निकला, उसकी अस्मत इज्जत का खयाल नहीं किया तूने, नीच कुत्ता...जी चाहता है गला घोंट दूँ तेरा!"

आवेश में वह शंभू पर झपटी और उसका गला पकड़ कर दबाने लगी।

"पहले सुनो भी तो काकी, फिर गला घोंट देना...तेरी मुरली को आँखें मिल गयी हैं काकी!"

"आँखें, मुरली को..." अचम्भे में डूबकर बोली वह—"कहाँ है मुरली! उसे मेरे पास ला....उसके बिना मेरी गोद सूनी होती जा रही है। मरने से पहले भर आँख देख तो लूँ उसे..."

"मुरली तारापुर की हवेली में रानी बनकर बैठी है काकी!" शंभू ने कहा।

सुनकर मुरली की माँ आश्चर्य में डूब गयी।

—

"अरे, मुए कैसे क्या हो गया...मुझे जल्दी बता। कैसे रानी बन गयी मेरी बेटी !...जल्दी बोल नहीं तो खुशी के मारे मेरे प्राण निकल जायेंगे !"

मुरली की आँखों का मिलना। तारापुर की हवेली में जाना। शंभू का आना। उसे सब सपना जैसा लग रहा था।

"मुझे विश्वास नहीं होता—कहीं सपना तो नहीं देख रही हूँ मैं... हे भगवान ! तेरी माया समझ में नहीं आती !"

"सपना नहीं है काकी, हकीकत है...चलो मेरे साथ तारापुर !"

और शम्भू मुरली की माँ को तारापुर ले चला।

और इधर !

रामदयाल जब शहर से अपनी हवेली में आया तो अपने घर में बेला को देख चकित रह गया।

"तुम, नागिन ! मुझे डँस कर यहाँ बैठी हो ?...क्या करने आयी हो यहाँ ? निकल जा यहाँ से !" रामदयाल गरजा।

बेला मुस्करायी !

तभी शम्भू वगैरह भी आये।

"सरकार ! जरा बेला को गौर से देखिये...यह मुरली है सरकार ! इसने आपको पाने के लिये कौन सा उपाय नहीं किया। उसे अपने चरणों की धूल बना लीजिये हुजूर !..." शम्भू बोला।

रामदयाल चकित आँखों से मुरली को देखता रह गया।

मुरली और बेला !

बेला और मुरली !!

एक वेश्या, दूसरी गृहिणी !

अजीब प्रश्न था !

"ठाकुर साहब !" डाक्टर श्री नाथ पास आकर बोले—"आज की नारी पराये बस में नहीं। वह अपना अधिकार जानती है और अपना

अधिकार पाने का हक तो सबको है...अब आप कहीं नहीं भाग सकते... आप इसके वस में हैं आज !"

"आप को इस मुरली को बनाना ही पड़ेगा सरकार!" शंभू ने कहा।

मुरली छुई-मुई सी एक कोने में खड़ी थी। रामदयाल ने अपनी भूलों के लिए उससे क्षमा माँगी तो—

"आप पुरुष हो कर स्त्री से क्षमा माँगते हैं...नारी तो हमेशा पराये वस में रहती है।" मुरली ने कहा। Foolish dialogue

"तुम आदर्श नारी हो—पराये वस में रहकर भी तुमने बहुत कुछ कर डाला—तुम धन्य हो।" राम दयाल ने कहा।

उस दिन सभी खुश थे।

कई दिनों बाद डाक्टर श्रीनाथ शहर जाने लगे।

मुरली उस दिन खूब रोयी। डाक्टर भी नदी बन गया।

"कभी भूल से याद आये तो याद कर लेना मुरली।" डाक्टर ने कहा।

मुरली ने कहा—"क्या कहते हो तुम।....ऐसा कहकर दिल मत दुखाओ। जितना स्थान पति के लिये मेरे हृदय में है, उतना ही तुम्हारे लिये भी...पराये वस में रहकर भी तुम्हारे वस में बँधी हूँ। तुम दोनों को नहीं त्याग सकती मैं। कभी रूठ मत जाना—नहीं तो मुरली की जिन आँखों में उजाला भर दिया है तुमने, उसमें फिर-से अँधेरा छा जायगा... अपने चरण छू लेने दो देवता।"

और... नगा ! Boaring end

— बस —

Not so good,
not so bad,
not so Boaring
the book will keep the reader

चि० वि०